सुब्रह्मण्य भारती

राष्ट्रीय जीवनचरित

सुब्रह्मण्य भारती

प्रेमा नन्दकुमार

अनुवाद

रमेश बक्षी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2018-1

पहला संस्करण : 1969

पहली आवृत्ति : 1997 *(शक 1918)*

SUBRAMANYA BHARTI *(Hindi)*

रु. 25.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,
ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

जीवन

कृतित्व

जीवन

जन्म, माता-पिता और प्रारंभिक वर्ष

सुब्रह्मण्य भारती का जन्म तमिलनाडु राज्य के तिनेल्वेली जिले की एक जमींदारी एट्टयापुरम में हुआ था। एट्टयापुरम एक जमींदार का कब्जा था जो अपने को 'राजा' कहलाना अधिक पसंद करता था। वह रियासत मद्रास की छोटी रियासतों में अधिक महत्वपूर्ण थी और इसके मालिक विद्वानों के प्रति कृपालु होने के लिए विख्यात थे। रोजी की तलाश में पास के एक गांव शिवालापेरी से चित्रस्वामी अय्यर एट्टयापुरम आए। वह एक संभ्रांत ब्राह्मण थे तथा तमिल, अंग्रेजी, गणित और तर्कशास्त्र में उनकी बहुत अच्छी जानकारी थी। इसके साथ ही साथ पश्चिमी तकनीक में भी उनकी रुचि बहुत गहरी थी। उस जमाने में जब कि ज्यादातर लोग तकनीकी जानकारियों में शून्य थे, वे किसी भी मशीन के एक एक पुर्जे को खोल डालते और फिर उसे ठीक ठीक जोड़कर दुरुस्त भी कर लेते थे। चूंकि उनमें प्राचीनता और नवीनता दोनों का अच्छा संगम था, वे एट्टयापुरम के दरबार में बहुत जल्द महत्वपूर्ण हो गए। उनके उर्वर मस्तिष्क में बहुत सारी योजनाएं थीं और 1880 में उन्होंने एट्टयापुरम में कपड़े की एक मिल खड़ी कर ली। दक्षिण भारत में प्रारंभिक दिनों में कल-कारखाने बैठाने की जो शुरुआत हुई उनमें उनकी कपड़ा मिल की योजना भी थी।

चित्रस्वामी अय्यर ने लक्ष्मी नाम की नजदीकी रिश्ते की बहन से विवाह किया जो देखने में भली होने के अतिरिक्त अपने कोमल स्वभाव के लिए मशहूर थी। दोनों ने बहुत ही सुख का जीवन व्यतीत किया। उनकी पहली संतान का जन्म एट्टयापुरम में 11 दिसंबर, 1882 को हुआ और उसका नाम सुब्रह्मण्य रखा गया। तमिल पंचांग के अनुसार बालक का जन्म चित्र भानु वर्ष के कार्तिक मास में मूल नक्षत्र में हुआ था। तमिल लोक जीवन में एक विश्वास बहुत प्रचलित है कि मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाले बालक का जीवन राजसी ठाट-बाट का होता है। सुब्रह्मण्य भारती के बारे में यह बात सही मालूम होती है क्योंकि वे निस्संदेह तमिल कविता के राजकुमार हैं। उनके जन्म से परिवार में सुख की लहर दौड़ गई और वे हर व्यक्ति के प्रिय हो गए। प्यार में ही उनके नाम को संक्षिप्त करके सुब्बय्या

कर दिया गया। एट्टयापुरम में उनके परिवार का दायरा काफी बड़ा था।

उनके नाना-नानी आदि भी उसी जगह रहते थे। उनके बाबा रामस्वामी अय्यर बालक सुब्बय्या के गहरे मित्र हो गए। वहां उनके चचेरे भाई और किशोर चाचा भी थे। यह सौभाग्य की ही बात थी कि पूरा वातावरण प्यार से भरा हुआ था, क्योंकि जब वे पांच वर्ष के थे तभी उनकी मां का अचानक देहांत हो गया था। चिन्नस्वामी अय्यर के लिए तो यह एक बड़ा आघात था ही, माता की मृत्यु की क्षति सुब्बय्या के लिए भी अपूरणीय थी। वास्तविकता यह है कि वे जीवन में कभी भी उस आघात से मुक्त नहीं हो पाए। अपनी माता के न होने का आघात उन्हें बराबर सताता रहा और काफी वर्षों के बाद भी जब कभी कोई कहीं पर 'मां' कहकर किसी को पुकार देता तो वे दुख और क्षोभ से भर उठते थे।

लक्ष्मी के पिता ने सुब्बय्या की शिक्षा में व्यक्तिगत दिलचस्पी ली और उन्हें अपनी देखभाल में ले लिया। मां का स्थान लक्ष्मी की छोटी बहन सीता ने लिया। सुब्बय्या की सौतेली मां भी उनके प्रति ममतालु थीं। सही अर्थों में सख्त पिता और आदर्शवादी पुत्र के बीच जब भी किसी तरह के तनाव आदि के क्षण आए उनकी सौतेली मां ने स्थिति को संभाला। चिन्नस्वामी अय्यर के दूसरे विवाह के अवसर पर सुब्बय्या का यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया। वे उन बच्चों में थे जो अपनी उम्र के बच्चों से कहीं आगे और तेज थे और जब कभी लोग इकट्ठा होते वे अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण बातों से सारे उपस्थित लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते। स्कूल की नियमित शिक्षा में उनकी वास्तविक रुचि नहीं रही। ऐसे समय में वे अधिकतर खेल में अपना वक्त बरबाद करते। अपने चाचा साम्बशिवम के साथ वे बचकानी हरकतों में घंटों गुजार देते और एक क्षण के लिए भी पढ़ाई की तरफ ध्यान न देते। एक घटना तो ऐसी भी हुई जिसमें उनकी जान भी जा सकती थी। साम्बशिवम और सुब्बय्या अक्सर ही चिन्नस्वामी अय्यर की कपड़ा मिल में खेलने के लिए जाया करते थे। पिता उनके खेल को यह सोचकर प्रोत्साहन देते थे कि मुमकिन है कि वहां जाने से सुब्बय्या के मन में आधुनिक तकनीक के प्रति रुचि जाग जाए। एक शाम दोनों लड़के मिल की दीवार फांद कर उसके अंदर चले गए। अय्यर की मेज की दराज को खुला देखकर दोनों ने पैसे के मोह में उसे तोड़-फोड दिया। लेकिन वहां पैसा तो था नहीं, एक पिस्तौल जरूर मिली। साम्बशिवम यह तो जानते नहीं थे कि वह क्या चीज है, लेकिन उन्होंने उसके साथ खिलवाड़ करना शुरू कर दिया। इत्तिफाक से उसका घोड़ा दब गया और गोली भारती से एक इंच की दूरी से निकल गई। इस घटना से सुब्बय्या बिल्कुल भयभीत नहीं हुए। पिता की उनको विद्वान बनाने की इच्छा के बावजूद सुब्बय्या की दिलचस्पी खेलकूद में बदस्तूर बनी रही। जब कभी चिन्नस्वामी अय्यर गंभीरता के साथ जिद्दी बालक को पढ़ाने के लिए बैठते, बालक या तो दिवास्वप्नों में खोया रहता या तमिल में टूटी-फूटी तुकबंदियां किया करता। यहां तक कि स्कूल के अध्यापक भी बालक को पढ़ाई की तरफ आकर्षित करने में सफल नहीं हो सके। ऐसे छात्र के साथ क्या किया जा सकता था जो कोई भी शब्द सुनकर उसी पर तरह तरह की तुक जोड़ने की कोशिश करने लगता। भारती

की एकांतप्रियता का कारण उनके पिता की सख्ती भी थी। उन्हें इस बात की भी आज्ञा नहीं थी कि वे साम्बशिवम के अलावा अपनी उम्र के अन्य लड़कों से दोस्ती कर सकें। बालक के इन कामों से पिता का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था और वे यह सोचते थे कि सुब्बय्या को उनकी उम्र के लड़कों से अलग करके दंड दे रहे हैं। इसके संबंध में सुब्बय्या के जीवन चरित्र में एक पीड़क प्रसंग है।

भारती ने अपने अकेलेपन को अपनी भीतर की दुनिया की खोज में बदल दिया। उनका कहना है कि कविता के प्रति उनका प्रथम और अदम्य प्यार एकात के उन दिनों में ही जन्मा।

जिस तरह से प्यार करने वाले दो पंछी
वन में सुखी हों,
या देवी और देवता
लौकिक खुशी से परे
एक आनंद में डूबे
अपने प्यार में बेसुध हों,
उसी तरह मैंने अपने वे स्वर्गिक दिन
उस मधु - मधुर के साथ बिताए।

भारती के बाबा की बालक के काव्य-प्रेम के प्रति सहानुभूति थी। उन्होंने उसे शास्त्रीय तमिल कविता की शिक्षा दी। वहीं के एक पुराने पंडित से उसे कम्बन का महाकाव्य 'रामायण' को भी पढ़ाया गया। चिन्नस्वामी अय्यर सुब्बय्या के तमिल पढ़ने पर भी नाक-भौं सिकोड़ते रहे क्योंकि वे चाहते थे कि बालक उस दुनिया में आए जहां अंग्रेजी में निपुण होना जरूरी है। पिता के क्रोध से बचने के लिए सुब्बय्या मंदिरों के कोनों में छिपकर घंटों वक्त गुजारा करते। वहीं पर बैठकर वे तमिल साहित्य का अध्ययन भी करते। एट्टयापुरम के उनके एक सहपाठी एस. सोमसुन्दर भारती का कहना है :

मुझे इस बात की व्यक्तिगत जानकारी है कि अपने बच्चे की आश्चर्यजनक काव्य प्रतिभा के लिए भारती के पिता को कितनी प्रशंसा मिलती थी। जब भारती सिर्फ आठ साल के थे तभी उन्होंने अनेक समस्यापूर्तियां की थीं। सुब्बय्या की काव्य रचना की उस प्रतिभा से जाने-माने कवि भी आश्चर्यचकित हो जाते थे।"

लेकिन इस तरह की प्रशंसा भी चिंतित पिता को संतोष नहीं दे सकी। वे उसके भविष्य को लेकर परेशान थे और अंततः उन्होंने सुब्बय्या को तिरुनेल्वेली के हाई स्कूल में पढने के लिए भेजने का निश्चय कर लिया।

शिक्षा : तिरुनेल्वेली और वाराणसी

सुब्बय्या, जो अनिच्छापूर्वक तिरुनेल्वेली में अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने गए, रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'घर की वापसी'(होम कमिंग)के फटिक चक्रवर्ती की तरह थे; उन्हें जो चीजें सबसे अधिक खल रही थीं वे थीं उनके हमदर्द बाबा की अनुपस्थिति और ममतामयी चाची का अभाव। तिरुनेल्वेली में उनके चाचा लोग देखभाल करने के लिए थे लेकिन उनमें उस समझदारी का अभाव था जिसकी आवश्यकता एकाकी बालक के लिए थी। हिन्दू कालेज में हाई स्कूल की पढ़ाई में उन्होंने कुछ साल यंत्रवत गुजारे। बाद के वर्षो में उन्होंने स्कूल के उन दिनों को अपने जीवनपट पर सबसे काले धब्बे के रूप में देखा। उनके मन में तमिल साहित्य के अध्ययन की आग धधक रही थी, लेकिन उन्हें वह सब भुला कर अंग्रेजी भाषा और विदेशी विज्ञान पढ़ना पड़ा। तीखेपन के साथ वे लिखते हैं :

मेरे पिता ने आदेश दिया
कि मैं नेल्लई में विदेशी ज्ञान प्राप्त करूं
यह वैसा ही था
जैसे किसी शेर के बच्चे को
घास दी जा रही हो।

फिर भी ये तीन वर्ष एकदम नीरस नहीं थे। सहपाठियों के बीच उनकी काफी प्रशंसा थी। वे किसी भी क्षण उस समय की मांग के अनुसार कविता लिख देते थे और हमेशा मांग पूरी करने के लिए तैयार दिखते थे। एक बार सुब्बय्या ने हिन्दू कालेज के पंडित की किसी आज्ञा का उल्लंघन कर दिया। पंडित जी नाराज हो गए। जब उन्होंने यह देखा कि बालक गैलरी के बेंच के सबसे ऊपरी सिरे पर बैठा हुआ है तब उन्होंने व्यंग्य में कहा :

"कहा जाता है कि तुम कविता की वर्षा उसी तरह करते हो जिस तरह काले बादल पानी बरसाते हैं। बादल की ही तरह तुम ऊपर ही ऊपर घुमड़ रहे हो। क्यों नहीं काले मेघों की तरह मेरे प्रश्नों पर उत्तर की वर्षा करते हो ?"

किशोर बालक का उत्तर था :

"विद्वान पंडित जी एक साधारण किंतु सर्वविदित तथ्य नजरअंदाज कर गए हैं। बादल अपनी इच्छा और ख़ुशी से बारिश करते हैं न कि किसी पंडित के आदेश से।"

सुब्बय्या में अन्नामलाई रेड्डियार और पाडिकास पुलाकर जैसे तमिल के प्राचीन कवियों की रचनाओं का अनुकरण करने, यानी उसी अंदाज में लिख लेने, की भी क्षमता थी। लेकिन इस तरह की उपलब्धि के बावजूद चिन्नस्वामी अय्यर की परेशानी में कमी नहीं आ सकी। उनकी चिंता उस वक्त तो और बढ़ गई जब सुब्बय्या मैट्रीकुलेशन की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए। निश्चय ही अय्यर के लिए यह आघात बहुत बड़ा था क्योंकि वे अपने पुत्र को एक विद्वान प्राध्यापक या प्रभावशाली अधिकारी बनाने के गुलाबी सपने देख रहे थे। हमें इस बात का पता नहीं कि भारती भीतर भीतर इस बात पर दुखी थे या नहीं। हां, दुनिया के सामने वे अनुद्विग्न ही दीखते रहे। वे एट्टयापुरम लौट आए और देखने पर तो यही लगता था कि उनके मन पर किसी तरह का बोझ नहीं है। अपनी जीवनकथा में वे लिखते हैं कि कम से कम वहां आने से यह तो हो गया कि वह विदेशी शिक्षा द्वारा बरबाद किए जाने से बचा लिए गए।

सुब्बय्या को रियासत की सेवा में रखने के सिवाय अय्यर के सामने और कोई चारा नहीं था। चूंकि राजा के दिल में तेज और प्रतिभाशाली लोगों के लिए जगह थी अतः उसने सुब्बय्या का स्वागत किया। इसके अलावा एक घटना भी ऐसी घटी जिसने सुब्बय्या की ओर विद्वानों की दृष्टि आकृष्ट कर दी। यह बात अभी साफ नहीं है कि वह घटना कब घटी, लेकिन शायद बात 1897 की है। सुब्बय्या राजा के स्नेहपात्र बन गए। इसका एक कारण तो यह था कि वे अय्यर के पुत्र थे और दूसरा यह कि वे एक ऐसे चतुर बालक थे जिसने तमिल और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के काव्य अच्छी तरह पढ़े थे, जिसे ऐसी निपुणता प्राप्त हो गई थी जो उसकी उम्र से काफी आगे थी। कहा जाता है कि राजाओं के ऐसे कृपापात्रों के मित्र नहीं होते। सुब्बय्या के साथ भी ऐसा ही हुआ, कभी कभी अशिष्टता की सीमा तक स्पष्टवादी होने के कारण उन्होंने भी अपने कुछ शत्रु पैदा कर लिए। उन शत्रुओं में से एक ने सुब्बय्या को उनके परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने पर भरी सभा में अपमानित करने की भी कोशिश की। सुब्बय्या का क्रोध भड़क उठा, आत्माभिमानी बालक ने आरोप लगाने वाले को चुनौती दे दी कि वह वाद-विवाद में उनका खुला मुकाबला करे। राजा की उपस्थिति में उस महत्वपूर्ण वाद-विवाद का आयोजन हुआ। विषय था 'शिक्षा'। दरबार की तरफ से एक विद्वान पंडित ने वाद-विवाद का विषय प्रवर्तन किया। सुब्बय्या उठ खड़े हुए और विनोद भरा एक शानदार भाषण दे डाला। उनके तर्क इतने अच्छे थे कि श्रोता अवाक और आश्चर्यचकित रह गए। एक वयोवृद्ध पंडित, जो अपनी विद्वता के कारण सबके आदर के पात्र थे, उठ खड़े हुए। सुब्बय्या को उनके बुद्धिमत्तापूर्ण भाषण के लिए शाबाशी दी और उसी के साथ उन्हें 'भारती' की उपाधि भी दे दी। 'भारती' देवी सरस्वती का ही एक नाम है। उस ऐतिहासिक क्षण के बाद सुब्बय्या का नाम 'भारती' पड़ गया।

आज भी दुनिया के विभिन्न भागों में फैले हुए लाखों तमिल प्रेमी सुब्बय्या की चर्चा बड़े प्यार के साथ 'भारती' के रूप में करते हैं, ऐसा लगा कि नियति बड़ी उदारता के साथ भारती पर मुस्करा रही है। उस जगह वे काफी लोकप्रिय भी हो गए। उनके पिता जो कि अभी अपने यौवन की ड्योढ़ी पर ही थे, वहीं रहते थे और उनकी देखभाल करते थे। राजा के यहां की नौकरी में उन्हें तमिल साहित्य के अध्ययन और काव्य-रचना के अभ्यास दोनों के लिए पर्याप्त समय मिला। 1897 में कडयक के चेलप्पा अय्यर की लड़की चेल्लम्माल से उनका विवाह भी बहुत हंसी खुशी के साथ हुआ। भारती की उम्र पांच साल की थी जब कि चेल्लम्माल सात वर्ष की थी। उसी मंडप में भारती की छोटी बहन लक्ष्मी और चेल्लम्माल की बड़ी बहन का भी विवाह हुआ। भारती की स्थिति एक विशिष्ट वर की थी। उन्होंने विवाह के समारोह में बड़े उत्साह से भाग लिया। विवाह भी बहुत ही खर्चीला रहा। चूंकि चिन्नस्वामी अय्यर और भारती के चाचा कृष्णशिवन दक्षिण भारत के राजसी और रियासती हलकों में काफी मशहूर थे, इसीलिए विवाह के अवसर पर बहुत से मूल्यवान उपहार भी मिले। उस घटना का जिक्र करते हुए भारती की पत्नी लिखती हैं, "मेरे पति निर्द्वद्व भाव से उपस्थित लोगों को आनंदित करते हुए प्रेम के गीत गाते रहे। लेकिन मैं बहुत ही लज्जा का अनुभव करती रही। मैं अक्सर सोचती कि पति के रूप में मुझे जो जीवन साथी मिला है वह सामान्य लोगों जैसा नहीं है।"

शायद भारती ने यह महसूस भी नहीं किया कि विवाह के समय उन्होंने क्या क्या गाया था क्योंकि उस समय उनकी उम्र बहुत कच्ची थी। उस वक्त के किसी लड़के के लिए बाल विवाह एक स्वाभाविक घटना होती थी। पिता की योजनाओं के सामने उसे बिना एक शब्द कहे समर्पित होना पड़ता था। लेकिन बाद के जीवन में उन्होंने यह अनुभव किया कि बचपन में ही विवाह हो जाने के कारण वे समय से पहले ही जिम्मेदारियों में बंध गए और उसकी वजह से कविता के प्रति उनके मन में पलने वाले प्यार में बाधा पड़ी। वह पूरी तौर पर उसकी ओर उन्मुख नहीं हो सके। अपने जीवनचरित में वह कहते हैं :

अरे ! मेरा ज्ञान विकसित हुआ
मेरे दो स्वामी थे
एक था प्यार,
दूसरा था कर्तव्य।

प्यार और कर्तव्य का वह संघर्ष, जिसमें एक तरफ रचनात्मक लेखन और दूसरी तरफ परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति दोनों का निर्वाह करना था, जल्द ही उनको तोड़ने लगा। 1898 ई. में चिन्नस्वामी अय्यर के देहांत के बाद तो एट्टयापुरम के उनके जीवन में और भी विश्रृंखलता आ गई। भारती का कहना है कि उनके पिता को रुपया जोड़ने का नशा था। शायद वे एक आदर्शवादी थे और उनकी यह कोशिश थी कि अपने कामों से वे यह सिद्ध कर सकें कि वही तिरुनेल्वेली के पहले व्यक्ति थे जिसने उद्योगीकरण के क्षेत्र में साहसपूर्ण पहल की। एट्टयापुरम की कपड़ा मिल एक बड़े घाटे का शिकार हो गई

और उसी के साथ उनकी आर्थिक बरबादी हो गई। टूटा हुआ दिल और खाली जेब लिए उनके पिता स्वर्ग सिधारे। पीछे छूट गई उनकी पत्नी और छोटे छोटे बच्चे जो एक तरह से अनाथ हो चुके थे। अय्यर की पत्नी अपने छोटे बच्चों के साथ अपने पिता के घर चली गई। अकेले छूट गए भारती, जो जीवन में भी व्यवस्थित नहीं हो सके थे, और उम्र भी अभी बीस तक नहीं पहुंची थी। इस कठिन क्षण में बनारस की उनकी चाची कुप्पम्माल ने उन्हें अपने यहा आने का निमंत्रण दिया। कुप्पम्माल एक दयालु स्त्री थीं। वे और उनके पति कृष्णशिवन धार्मिक प्रवृति के थे। एक दिन उन्होंने घर छोड़ दिया था और पैदल ही बनारस की तीर्थयात्रा पर निकल पड़े थे। उन्होंने जीवन के शेष दिन उस पवित्र नगर में ही गुजारने की सोची थी। एट्टयापुरम के राजा की दयालुता का बखान होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने ही ऐसी व्यवस्था की जिसके कारण वे लोग आराम के साथ बनारस पहुच गए। वहां पर उन्होंने एक सादा और धार्मिक जीवन बिताना शुरू किया। दूसरों की सहायता करने वाले उनके सरल और पवित्र स्वभाव ने बनारस के लोगों का ध्यान उनकी ओर खींच लिया। आकर्षित होने वालों में एक थे हनुमान घाट के शैव मठ के मालिक एक ब्रह्मचारी। उन्होंने कृष्णशिवन को अपने सहयोगी के रूप में आमंत्रित किया। कुछ दिनों के बाद जब कि ब्रह्मचारी जी को अपनी मृत्यु का पूर्वज्ञान होने लगा, उन्होंने एक वसीयत के जरिए कृष्णशिवन को अपने मठ का उत्तराधिकारी बना दिया। मठ का काम बहुत ही परिश्रम का था लेकिन उसके बावजूद शिवन और उनकी पत्नी के लिए रुचिकर था। शिवन ने मठ में नटराज की एक मूर्ति स्थापित कर दी। उन्होंने अपना जीवन नटराज की पूजा करने तथा बनारस पहुंचने वाले तीर्थयात्रियों को पूजा आदि में मदद देने में गुजारा। चिन्नस्वामी की दरिद्रता में मौत हो जाने के बाद कुप्पम्माल ने भारती से कहा कि वे बनारस आ जाएं और अपनी शिक्षा जारी रखें। उनका ख्याल था कि अगर वे अपनी पढ़ाई पूरी करके डिग्री प्राप्त कर लें तो कोई स्थायी नौकरी मिल जाएगी और सुविधापूर्वक चेल्लम्माल के साथ परिवार का भरण पोषण हो जाएगा। योजना अच्छी थी। पढ़ाई और आवास की समस्या के हल होने के साथ साथ एक बात यह भी थी कि बनारस की यात्रा उनकी साहसिकता की भूख को भी तुष्ट करती।

उन्होंने सेंट्रल हिन्दू कालेज में नाम लिखवाया। वह कालेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संबद्ध था। प्रवेश परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, जब कि उन्हें दो नयी भाषाएं, संस्कृत और हिंदी नए सिरे से पढ़नी पड़ी थी। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि वे केवल स्वप्न देखने वाले ही नहीं थे बल्कि उनमें किसी उद्देश्य के लिए शीघ्र ही सक्रिय होने की भी क्षमता थी। बच्चे की सफलता से चाचा और चाची दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए लेकिन इसके बावजूद भारती जैसे मनमौजी लेकिन प्रतिभाशाली बालक को हर अवसर पर अपने अनुकूल बना लेना आसान नहीं था। भारती के बाल कटाने, मूंछें रखने और उत्तरी भारत के फैशन के अनुसार शानदार पगड़ी बांधने से शिवन को निराशा हुई। उनका ख्याल था कि वे सब चीजें बेकार हैं और इनसे पता चलता है कि बालक के मन में धार्मिक भावना

का अभाव है। लेकिन शिवन और कुप्पम्माल दोनों ही बहुत भले थे। इन चीजों के बावजूद एक घटना के कारण भारती उन दोनों का प्यार पाने में सफल हो गए। एक दिन शिवन नटराज की पूजा कर रहे थे। संयोगवश पुजारी के पहुंच न पाने से शिवन की पूजा अधूरी रह गई थी। वे तब तक अन्न नहीं छूते थे जब तक कि पूजा पूर्ण न हो जाए। परेशान कुप्पम्माल के दिमाग में सहसा एक विचार आया और उन्होंने भारती को बुलाया और कहा कि वह पूजा के गीत गा दें। भारती फौरन तैयार हो गए और कुछ ही क्षणों में तन्मयता के साथ उन्होंने पूजा गीतों को गाकर चाचा और चाची दोनों को मुग्ध कर दिया। शिवन की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। उन्होंने भारती को सीने से लगा लिया। उसी दिन से दोनों ने निश्चय कर लिया कि वे भारतीय के विरोध में कुछ नहीं करेंगे। उन्होंने यह जान लिया कि किशोरावस्था की चंचलता और बहक के बावजूद बालक में किसी तरह का दोष नहीं था। उसका मन सही जगह पर था और हमेशा सही जगह पर ही रहेगा।

परीक्षा के बाद भारती यह सोच नहीं सके कि उन्हें क्या करना है। उन्होंने बीस रुपये महीने की अध्यापकी के लिए कोशिश की। यह समय भारती के लिए बड़ी कठिनाई का था। बनारस के उनके एक मित्र एस. नारायण अयंगार ने उन दिनों की चर्चा करते हुए लिखा है :

"सुब्बय्या उन दिनों घोर दरिद्रता की स्थिति में थे। मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि समसामयिक राजनीति में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। जब भी उन्हें समय मिलता वे हम लोगों के सामने शेली की कविताओं का पाठ करते और उसी के साथ साथ अंग्रेजी कविता की खूबियों की व्याख्या करते। संस्कृत का उनका ज्ञान बहुत हल्का था लेकिन इसके बावजूद संस्कृत काव्य की व्याख्याएं आदि सुनने में वे गहरे आनंद का अनुभव करते थे।"

यदि एक तरफ भारती की दिलचस्पी राजनीति में नहीं थी तो दूसरी तरफ भारतीय समाज में फैली हुई बुराइयों के प्रति वे पूरी तौर पर जागरूक थे। स्त्री और पुरुष की समानता का विचार उनके मन में उद्वेलन पैदा करता था। स्त्रियों की शिक्षा में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी। उन्होंने एक बार सरस्वती पूजा के दिन काफी बड़ी संख्या में श्रोताओं को इकट्ठा किया और इस विषय पर तमिल में एक भाषण दे डाला। इस प्रकार बनारस प्रवास के अंतराल में उनमें दो महत्वपूर्ण चीजों के प्रति दिलचस्पी पैदा हुई। पहली दिलचस्पी अंग्रेजी कविता के प्रति थी। इसकी वजह से काव्य संबंधी वह परंपरागत दृष्टिकोण विकसित हुआ जो इसके पहले नहीं था। उसी के साथ साथ भारती की कविता ने भी उन परंपरागत सीमाओं को तोड़कर अपने लिए नए क्षितिज तलाश किए।

स्त्रियों को समानता का दर्जा देने का भारती का विश्वास भी पर्याप्त महत्वपूर्ण है। इसकी वजह से उनमें विद्रोह की भावना पैदा हुई और वे सीधे सीधे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित हुए। उनमें सोचने समझने और प्रश्न करने की प्रवृति का विकास हुआ चाहे वह भारतवर्ष का सामाजिक ढांचा हो या अंग्रेजी साम्राज्य का आधार, सभी के प्रति उनके मन में एक प्रश्नकर्ता का भाव जगा।

दक्षिण वापसी

एट्टयापुरम के राजा ने भारती से उनके जन्म स्थान लौट आने को कहा और उसी के साथ साथ अचानक उनका बनारस के प्रवास का अंत हो गया। जिस समय रानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई और एड्वर्ड सप्तम् गद्दी पर बैठे, उस समय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में एक दरबार किया। एट्टयापुरम के राजा भी उस दरबार में शामिल हुए और लौटते हुए कुछ दिनों के लिए बनारस ठहरे। राजा के कुछ दरबारियों ने भारती की अकेलेपन की पीड़ा का अहसास करके उनसे निवेदन किया कि वह भारती को अपनी सेवा में ले लें। राजा सहमत हो गए और भारती एट्टयापुरम लौट आए। एट्टयापुरम पहुंचने के बाद दो वर्षो तक भारती ने सुविधा का जीवन बिताया। कवि मित्र के रूप में राजा के साथ रहते हुए उन्हें अपनी रचनाएं सुनाते रहे, लेकिन स्वभाव से अत्यंत स्वतंत्र प्रकृति के होने के कारण दरबार के वातावरण और लोगों के छोटे और बड़े के भाव से उन्हें पीड़ा होती रही। इसके अलावा उन्हें इस बात से भी निराशा हुई कि राजा की दिलचस्पी अश्लील और भद्दी कविताएं सुनने में अधिक थी। उसी के साथ साथ राजा ने उनमें एक ऐसी आदत भी डाल दी जिससे उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। अफीम खाने की आदत आने वाले उन दिनों में भारती की बरबादी का कारण बन सकती थी जब उनके सामने रोजी रोटी की समस्या विषम रूप से आ जाती। मगर इसके बावजूद एट्टयापुरम के उनके प्रवास का एक पक्ष अधिक प्रकाशमान भी था। वहां पर उन्होंने अपनी फुरसत का सारा समय महान साहित्य के अध्ययन में गुजारा। यह अध्ययन विशेष रूप से प्राचीन तमिल साहित्य का था। कई वर्षो के बाद उन्होंने जीवनी के ढंग का एक लेखन भी 'चिन्न शंकरन कथा' शीर्षक से किया। उसमें एट्टयापुरम के उनके प्रवास और उन्हें मित्र बनाने वाले राजा का विशद वर्णन है। दो वर्षो के अपने इस लुकाछिपी के जीवन के बाद ही भारती ने यह निश्चय कर लिया कि उन्हें वह जगह छोड़ देनी चाहिए और ईमानदारी के साथ अपनी रोजी कमाने का प्रयत्न करना चाहिए, काम चाहे कितना ही सख्त क्यों न हो। एट्टयापुरम छोड़ने में एक और कारण सहायक हुआ

था। किसी मौके पर भारती ने बिना सोचे समझे राजा पर कोई कटाक्ष कर दिया था जिसका उनके मन पर बुरा प्रभाव पड़ा। जाते जाते उन्होंने राजा को ही विषय बनाकर एक व्यंग्यात्मक कविता भी लिख दी जो विदा के समय छोड़े गए तीर की तरह थी। इसके बाद उन्होंने एट्टयापुरम छोड़ दिया।

एट्टयापुरम से भारती पास के ही मदुरै में गए और वहां पर नौकरी की तलाश शुरू की। वहां पर उनके एक मित्र एम. गोपालकृष्ण अय्यर थे जो मदुरा कालेज में तमिल के पंडित थे। उन्होंने भारती का परिचय सेतुपति हाई स्कूल के तमिल के शिक्षक पंडित शन्मुखम् पिल्लै से कराया। पंडित जी ने भारती को एक अस्थाई जगह पर तमिल के शिक्षक के रूप में नियुक्त कर लिया। भारती ने पहली अगस्त, 1904 ई. को वह नौकरी शुरू की। उनका मासिक वेतन साढ़े सत्रह रुपए था।

उसके महीने भर पहले मदुरै की एक तमिल पत्रिका 'विवेकभानु' में पहली बार "एकांत' शीर्षक से उनकी एक कविता प्रकाशित हुई थी। भाषा के दृष्टि से कविता का गठन तमिल काव्य की प्राचीन नीरस और भारी भरकम शब्दावली में किया गया था मगर इसके बावजूद उसके स्वर में वर्ड्सवर्थ का प्रभाव था। कारण यह था कि भारती स्वयं तमिल की उन प्राचीन काव्यात्मक रूढ़ियों से अपने को मुक्त करने की अवस्था में थे। वे तमिल साहित्य के अपने व्यापक ज्ञान के नाते एक सफल अध्यापक हो सकते थे। उनके एक छात्र ने चमकीली आंखों वाले भारती के कक्षा में पढाने का जिक्र करते हुए कहा है, "उस समय भी उनकी आंखों में जो चुंबकीय शक्ति थी उससे कोई भी आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता था। लेकिन हमें कभी उनकी महानता का अहसास नहीं हुआ।" 10 नवंबर, 1904 ई. को उनकी वह अस्थाई नौकरी भी खत्म हो गई।

सहायक संपादक

भारती के बारे में आगे की जानकारी हमें यह मिलती है कि वे मद्रास के दैनिक पत्र 'स्वदेशमित्रन्' में आए। पत्र के संपादक जी. सुब्रह्मण्य अय्यर भारती से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उनको सहायक संपादक की जगह दी। सुब्रह्मण्य अय्यर एक लोकप्रिय देशभक्त और प्रसिद्ध संपादक थे। उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की खोज थी जिसे तमिल और अंग्रेजी दोनों का अच्छा ज्ञान हो। भारती की कलम में शक्ति तो थी ही, उन्होंने संपादक की सारी उम्मीदें पूरी कर दीं। इस प्रकार श्री अय्यर भारती में राजनीति के प्रति दिलचस्पी जगाने और उन्हें राजनीतिक जीवन में प्रविष्ट कराने का एक कारण सिद्ध हुए।

मद्रास में भारती 1904 ई. के नवंबर महीने में आए थे। उन्हें तीस रुपए मासिक का वेतन दिया गया। कार्यालय में भारती का मुख्य काम अंग्रेजी दैनिकों में प्रकाशित समाचारों का तमिल में अनुवाद करना था। यह काम देखने में जितना सरल लगता है उतना सरल होता नहीं है। आधुनिक अंग्रेजी का तमिल में अनुवाद करना भी इसलिए सरल नहीं था क्योंकि उसके लिए योग्यता के साथ साथ साहस और व्युत्पन्नता की आवश्यकता थी। भारती की विशेषता यह थी कि वे किसी भी क्षण लीक से अलग हट कर उसका अनुवाद कर देते जो बोधगम्य भी होता। उस वक्त राष्ट्रीय राजनीति जिस स्थिति से गुजर रही थी उसमें अनुवादक से असाधारण ढंग से आत्मनियंत्रित होने की भी अपेक्षा की जाती थी। अनुवाद को समुचित भी होना पड़ता था, बोधगम्य भी। यह समय भारती के लिए अभ्यास का समय था। अपनी प्रतिभा से उन्होंने आधुनिक तमिल भाषा को एक स्वाभाविक और लचीला रूप दिया। महज परिश्रम के बल पर युवक भारती ने भाषा का जो विकास किया उसकी वजह से वे तमिल पत्रकारों के आदर्श बन गए। उन्होंने जल्दी जल्दी में भी अंग्रेजी से जिन चीजों का तमिल में रूपांतर किया, वे महज अनुवाद नहीं लगती थीं। कारण यह था कि अनूदित होने के बावजूद उनमें रचनात्मक शक्ति और सभावनाओं के दर्शन होते थे, अतः इस बात पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि सुब्रह्मण्य अय्यर भारती को क्यों

इतना चाहने लगे। लेकिन अय्यर बहुत चतुर व्यक्ति थे। उनकी हमेशा यह कोशिश रहती कि भारती से अधिक काम लिया जा सके। भारती के पांडिचेरी के एक सहयोगी रामस्वामी ने उनके जीवन चरित के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुए उनके ही कथन को उद्धृत किया है :

"मैं शाम के वक्त आफिस की अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ घर जाने की बात सोचता रहता हूं। मुझे चूंकि कुछ रुपयों की जरूरत होती है अतः मैं धर्मसंकट के साथ यह सोचता रहता हूं कि मुझे अय्यर से मांगना चाहिए या नहीं। तभी अचानक काफी का एक प्याला लेकर कोई नौकर आ जाता है और बताता है कि यह अय्यर द्वारा भिजवाई गई है। अय्यर के स्नेह का यह प्रदर्शन मुझे सातवें आसमान पर पहुंचा देता है। ऐसे ही समय अय्यर खुद वहां आ जाते हैं रुपये मांगने की बात मैं भूल जाता हू। अय्यर कहने लगते है, 'भारती, क्या तुमने सर हेनरी काटन का वह जानदार भाषण देखा है जो उन्होने इंग्लैड मे भारतवर्ष के बारे में दिया था ?' 'हां देखा है। उन्होंने बहुत अच्छा भाषण दिया।' मैं जवाब देता हू। ' क्या हमें उस भाषण को कल के पत्र में प्रकाशित नहीं करना चाहिए ? ...' अय्यर मुझसे पूछते और मैं कहता 'जरूर देना चाहिए' तब श्री अय्यर कहते, 'तुम्हारे सिवा ऐसा कौन है जो उस अंश का अनुवाद तमिल मे इस रूप में कर सके कि उसकी ध्वनि कहीं से विकृत न हो ?' मैं आदेशपालक की मुद्रा में अपना सिर झुका देता। अय्यर कहते कि उसे आफिस में ही बैठकर अनूदित करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम इसे घर लेते जाओ और जब कल सुबह लौटो तो अनुवाद साथ लेते आओ। इतना ही काफी होगा। तुम तो उसका अनुवाद आनन-फानन में कर लोगे। आधे घंटे से ज्यादा का समय नहीं लगेगा।"

दरअसल भारती अय्यर के आग्रह या आदेश का पालन करते। अय्यर के प्रति उनके मन में यह सोच कर ही गहरी कृतज्ञता का भाव भर आता था कि उन्होंने उनकी जीवन यात्रा को सही दिशा दी। उनके दिमाग मे अक्सर अय्यर के ये शब्द गूंजते, "भारती, तुम्हारी भाषा आश्चर्यजनक है। तुम्हारे एक एक शब्द के लिए एक एक लाख रुपया दिया जा सकता है। तुम कालिदास हो, लेकिन मैं राजा भोज नहीं हूं।" दैनिक पत्र के लिए अनुवाद की जितनी आवश्यकता होती उसे पूरा करने के साथ साथ भारती विवेकानन्द, अरविन्द और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में दिए गए अध्यक्षों के भाषणों का भी तमिल में अनुवाद करते।

इस नयी नौकरी में कुछ महीने काम करने के बाद जब भारती परिपक्व हो गए तो उनका कवि व्यक्तित्व पुनः जागरूक हुआ और उनमें नयी शक्ति आई। उनकी पहली कविता 15 सितंबर, 1905 को 'स्वदेशमित्रन्' में 'शाबाश बंगाल' शीर्षक से प्रकाशित हुई। चूंकि समाचारपत्र 'नरमपंथी' नीतियों पर चलता था इसलिए भारती को यह आज्ञा नहीं थी कि वे उसमें अपने संपादकीय या अपने मौलिक लेख प्रकाशित करें, लेकिन कठिन परिश्रम के साथ साथ भारती ने अपनी सामर्थ्य का उपयोग सामाजिक सुधार के क्षेत्र में करना शुरू किया। कम से कम इस विषय के लेख समाचार पत्र में स्थान पा सकते थे। बनारस में

भारती ने स्त्रियों की शिक्षा और उनकी समानता पर कुछ विचार किया था। मद्रास में उन्होंने उन विचारों को विस्तारपूर्वक व्यक्त करना शुरू किया। उन्होंने जाति संबंधी बंधनों को तोड़ने के प्रयास के साथ साथ हर मनुष्य को समानता का अवसर देने की भी वकालत की। इस आंदोलन में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के उनके मित्रों ने सहयोग दिया। उनमें एक कानून का छात्र था, एक मजदूर नेता था, एक शिक्षक था, एक डाक्टर था और एक पत्रकार भी था। इस गुट को एक प्रकाशन संस्था के मालिक रामशेष अय्यर ने प्रोत्साहन दिया। गुट के लोग सामाजिक विषयों पर बहस मुबाहिसे करते। इन लोगों ने एक गैर ब्राह्मण द्वारा बनाया गया भोजन ग्रहण करके जात पांत के बंधनों के प्रति अपना विरोध प्रकट किया। उनके इस काम से मद्रास के लोगों में व्यापक उत्तेजना फैल गई। इन युवक मित्रों ने रेडिकल सोशल रिफार्म नाम का एक अंग्रेजी का साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित किया। इन सारे कामों के जरिए भारती धीरे धीरे राजनीति के क्षेत्र में जाने अनजाने प्रविष्ट हो गए। काम के सिलसिले में एक अनुवादक के रूप में उन्हें आए दिन के राजनीतिक समाचारों से गुजरना पड़ता था, अतः एक तरफ वे भारत में घटित होनेवाले राजनीतिक जीवन की घटनाओं के जीवंत संपर्क में आए और दूसरी तरफ उनमें क्रांतिकारी ढंग से सामाजिक सुधार के लिए काम करने की झलक विकसित होती रही। लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन के साथ उनके इन विचारों में और कठोरता आई और भारत के हजारों लोगों की तरह उन्होंने भी राजनीति में सक्रिय रूप से हिस्सा लेना शुरू कर दिया।

राजनीति और 'गुरु दर्शन'

बीसवीं सदी का प्रारंभ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में नए तत्त्व लाया। राजनीतिज्ञों की नयी पीढ़ी में एक वर्ग गोपालकृष्ण गोखले, वी. कृष्णस्वामी अय्यर, रासबिहारी घोष और फीरोजशाह मेहता सरीखे नरमपंथियों का था, दूसरा वर्ग कट्टर उग्रपंथियों का था जिसमें लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल, बाल गंगाधर तिलक और श्री अरविन्द थे। मगर नरमपंथी हों या उग्रपंथी किसी भी वर्ग की नयी पीढी के लोगों में उदासीनता नहीं थी। वे सभी चाहते थे कि काम किया जाए। इटली की स्वाधीनता और उसके एकीकरण के मैत्सिनी, गैरिबाल्डी और विक्टर इमैन्युएल जैसे वीर नेताओं ने पढ़े-लिखे भारतीयों में सोचने समझने की अग्नि धधकाई। आयरलैंड का स्वतत्रता संग्राम भारतीयों के लिए एक जीवन प्रमाण बन गया। उसके बाद ही 29 सितंबर,1905 को बंगाल का विभाजन हो गया और सारा देश क्रोध की अग्नि से धधकने लगा।

अनुवादक का काम करने के सिलसिले में भारती को सभी समाचारपत्र पढने पडते थे। उनका क्रोध भी दिनों-दिन बढ़ता गया। वे सोचने लगे कि बहिष्कार और स्वदेशी के आंदोलन की बजाय आंदोलन की राजनीति को उत्तेजनात्मक रूप देना अनिवार्य है। कांग्रेस के एक समारोह में संवाददाता के रूप में उपस्थित होने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि वे खुद भी राजनीति में कूदेंगे। 1905 में वे पहली बार कांग्रेस के समारोह में बनारस में शामिल हुए। उस वर्ष गोखले कांग्रेस के अध्यक्ष थे। बनारस जाने के पीछे युवक पत्रकार के मन में एक भाव यह भी था कि उसके माध्यम से पुरानी स्मृतियों को ताजा करने का अवसर मिलेगा और इससे वे बहुत प्र न्न भी हुए। कांग्रेस का उसके बाद का वार्षिक समारोह दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ। भारती ने भी उसमें भाग लिया। इसी बीच उनके जीवन में एक विशिष्ट घटना घटी—वह थी सिस्टर निवेदिता से उनकी मुलाकात। सिस्टर निवेदिता जन्म से एक अंग्रेज महिला होने के साथ स्वामी विवेकानन्द की शिष्या और रामकृष्ण मठ की पहली उपासिका थीं। वे एक महान सामाजिक कार्यकर्ता थीं जिन्होंने

बंगाल में उत्साहपूर्ण सेवा भाव से नारी शिक्षा को सबसे पहले प्रोत्साहन दिया। भारती को किसी तरह उनका इंटरव्यू लेने में सफलता मिल गई। पहली ही दृष्टि में उन्होंने भांप लिया कि सिस्टर के रूप में वे मां-शक्ति हैं। वे अत्यंत विनम्रता और श्रद्धाभाव से उनके सम्मुख खड़े हो गए। तब सिस्टर ने कहा :

"मेरे बेटे ! दिमाग में जो भी संकोच या दिक्कतें हैं उन्हें निकाल फेंको। जाति, वंश और जन्म के कारण मनुष्य में जो अमानवीय अंतर आ गया है उसे भूल जाओ। अपने हृदय में प्यार को पालो; तुम देवतातुल्य बन जाओगे और इतिहास के पृष्ठों में तुम्हें सम्मानपूर्वक स्थान मिलेगा।" संभव है कि उन्होंने भारती की निगाहों में उनकी भविष्य की महानता की एक चमक या कुछ असाधारणता देखी हो। बाद के दिनों में उन्होंने भारती के बारे में जानकारी चाहते हुए यह पूछा कि वे विवाहित हैं या नहीं। भारती ने उन्हें बताया था कि उनकी पत्नी है और एक बच्ची भी। तब निवेदिता ने यह पूछा कि वे अपनी पत्नी को क्यों नहीं लाए हैं। भारती ने झिझक के साथ उत्तर दिया :

"हमारे परिवार में पत्नियों को सार्वजनिक स्थानों पर ले जाने की परंपरा नहीं है। यदि लाएं भी तो वे कांग्रेस के बारे में क्या समझेंगी ?"

सिस्टर निवेदिता ने कहा :

"समाज का आधा वर्ग यदि शेष आधे वर्ग को गुलाम बनाए रखता है तब वह कैसे स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है ? अतीत को विस्मृत हो जाने दो। आज के बाद यह मत सोचो कि तुम्हारी पत्नी कुछ भिन्न तरह की है। उसे अपना बायां हाथ मानो और उसके लिए हृदय में आदर का भाव इस तरह पालो जैसे वह कोई देवात्मा हो।"

भारती ने उनकी सलाह पर सहमति प्रकट की। सिस्टर निवेदिता प्रसन्न हो गई। पहली ही दृष्टि में भारती ने निवेदिता को देखकर उनमें शक्ति का दर्शन किया था, और उसी के साथ यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि आने वाली जिंदगी में वही उनके आध्यात्मिक उन्नयन का माध्यम है। सिस्टर के शब्दों में उन्होंने भारत के सामाजिक पुनरुत्थान का दर्शन किया। सिस्टर के ज्वलंत उदाहरण ने भारती को यह सोचने की प्रेरणा दी कि राजनीति का उग्रपंथी आंदोलन ही एकमात्र रास्ता है। क्योंकि निवेदिता ने ही उन्हें बताया था कि भारत की कल्पना उन्हें एक दुखी मां के रूप में करनी चाहिए जो बेड़ियों में जकड़ी है। भारती ने निश्चय कर लिया कि वे उन लोगों के साथ हो जाएंगे जो आंदोलन के जरिए उन बंधनों को तोड़ने में लगे हुए हैं। सिस्टर निवेदिता के आग्रह में इतनी सच्चाई थी कि जिस समय वे भारती से बात कर रही थीं, गुमसुम हो गई थीं। अपने गाउन के ऊपरी हिस्से को आवेश में खोलते हुए गरजते स्वर में उन्होंने कहा :

"तुम भारतीयों को बहादुर होना चाहिए। तुममें निश्चय ही वह साहस होना चाहिए ताकि तुम हमें यहीं पर छुरा मार सको।" सिस्टर के उस आग्रह का भारती पर सीधा असर हुआ और वह उग्रपंथी हो गए।

भारती बार बार यह कहते कि सिस्टर निवेदिता उनकी गुरु हैं। एक बार के ही इंटरव्यू।

में उन्होंने भारती के मन में आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक मंत्र फूंक दिया कि उनकी आंखें खुल गईं। विदा होते हुए निवेदिता ने भारती को प्रेरणा के प्रतीक के रूप में एक सूखा पत्ता दिया था। वह पत्ता निवेदिता अपनी हिमालय यात्रा से लाई थीं। भारती ने जीवन के अंत तक बड़ी सावधानी के साथ उस पत्ते की देखभाल की और उसके प्रति श्रद्धा का भाव बनाए रखा। दरिद्रता के दिनों में भी उन्होंने उस पत्ते को अपने से अलग नहीं किया। हालांकि उसके लिए उन्हें काफी धन देने की बात कही गई थी। वह पवित्र पत्ता उनकी मृत्यु के बाद खो गया, लेकिन सिस्टर निवेदिता की जीवित स्मृति उनकी एक कविता में मोती की तरह चमकती है।

माता निवेदिता !
तू एक मंदिर है प्यार का,
सूर्य है; जो मेरी आत्मा के
अंधकार को नष्ट करता है—
तू वर्षा है
हमारे जीवन की सूखी धरती के लिए—
तू भटके और निराश लोगों की
मददगार है
महानता के प्रति समर्पित
तू दिव्य सत्य की चिनगारी है
तुझे मेरा नमन।

उस समय के अपने दो काव्य संग्रहों को भारती ने सिस्टर निवेदिता को ही समर्पित किया। 'स्वदेश गीतांजलि' के समर्पण में उन्होंने लिखा : "यह लघु पुस्तक उस गुरु के चरणों में समर्पित है जिसने मुझमें भारत माता की परिकल्पना की दृष्टि पैदा की, जिसने मुझमें देशभक्ति की भावना ठीक उसी तरह जगाई जिस तरह कृष्ण ने अर्जुन के सामने विश्वरूप में प्रकट होकर उन्हें आत्मा के वास्तविक रूप की सीख दी थी।" एक वर्ष बाद 1909 में अपनी पुस्तक 'जन्मभूमि' भी सिस्टर निवेदिता को समर्पित करते हुए लिखा, "यह पुस्तक भगवान विवेकानन्द की उस धर्मपुत्री श्रीमती निवेदिता को समर्पित है जिन्होंने बिना एक शब्द कहे हुए भी क्षण भर में त्याग की महानता और सच्ची सेवा की प्रवृत्ति की सीख दी।"

माता की सेवा : बलिदान ! कलकत्ता समारोह से लौटने के बाद जब वे मद्रास पहुंचे तो बिल्कुल बदल चुके थे। दबी हुई उत्तेजना की आग उनके भीतर धधक रही थी। वे चाहते थे कि काम किया जाए, उनकी इच्छा हुई कि वे अपनी लेखनी का उपयोग मुक्ति की तलवार के रूप में करें, लेकिन 'स्वदेशमित्रन्' उन्हें इसके लिए अनुमति न देता। उनको एक ऐसे समाचार पत्र की जरूरत थी जिसमें उन्हें स्वयं लिखने और लिखे हुए को प्रकाशित करने की स्वतत्रता होती। अंततः उन्हें वह अवसर मिल गया। मद्रास के एक निर्भीक ब्राह्मण

देशभक्त, मन्दायम तिरुमलाचारियार ने अपनी सारी संपत्ति स्वतंत्रता आंदोलन की वेदी पर निछावर कर दी और पत्र का प्रकाशन शुरू हो गया। तिरुमलाचारियार 'ब्रह्मवादी' नाम की एक अंग्रेजी पत्रिका का संपादन कर रहे थे। उसी वक्त पत्रिका के स्वामी एम. सी. आजागिया सिंह पेरुमल ने उन्हें तमिल में भी एक पत्रिका निकालने का सुझाव दिया। अप्रैल, 1906 में 'इंडिया' नामक तमिल पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। उसके लिए भारती संपादकीय के साथ ही लंबे राजनीतिक लेख, कविताएं और अन्य प्रकार की रचनाएं भी लिखते। उसके अलावा वे कार्टून भी बनवाते और उसके सिलसिले में व्यंग्य चित्रकार को कार्टून से संबद्ध विचार देने में भी सहायता करते। भारती एक अंग्रेजी साप्ताहिक 'बाल भारती' के भी संपादक हो गए। अपने कुछ मित्रों की सहायता से उन्होंने भारत भंडार नाम की भारतीय वस्तुओं की एक दुकान भी खोली। विदेशी चीजों के बहिष्कार के लिए शुरू किए गए इस आंदोलन में तब और तेजी आ गई जब विपिनचन्द्र पाल मद्रास आए और उन्होंने वहां पांच जोशीले भाषण दिए। श्री पाल का मद्रास आगमन भारती और उनके मित्रों की अथक कोशिशों का परिणाम था। उनको बेजवाड़ा से मद्रास तक लाने में भारती ही उनके साथ रहे। वही एकमात्र उग्रपंथी थे। उनके अलावा मद्रास के लगभग सारे राजनीतिक नेता नरमपंथी थे। इसीलिए उनमें से सभी ने उनके भाषण के आयोजन के अवसर पर समारोह की अध्यक्षता करने से इंकार कर दिया। अंत में 'स्वदेशमित्रन्' के सुब्रह्मण्य अय्यर ने अध्यक्षता का निमंत्रण स्वीकार किया। अय्यर स्वयं ही नरमपंथी विचारों के थे, लेकिन उसके बावजूद यदि उन्होंने अध्यक्षता का निमंत्रण स्वीकार कर लिया तो उसका कारण यह था कि मित्र के रूप में भारती का उन पर असर था। यह बात उन्हीं भाषणों के दौरान की है जब लोगों ने सार्वजनिक स्थानों पर विदेशी चीजों को जलाना शुरू किया। भारती खुद भी एक के बाद दूसरी बैठक में निरंतर भाषण देते और मद्रास-बीच पर एकत्र विशाल जनसमूह के मन को विचलित कर देने वाले देशभक्ति के गीत सुनाकर मंत्रमुग्ध करते। उनका एक ही उद्देश्य था। हमें अंततः उग्रपंथी तरीकों को अपनाना ही है।

यहा तक पहुंचते पहुंचते राजनीतिक क्षेत्रों में भारती की पहचान कट्टर उग्रपंथी के रूप में होने लगी थी। नरमपंथियों की उदासीनता और ब्रितानी शासकों की सभी भारतीय मांगों को अस्वीकार करने की जिद की वजह से निराश होकर उग्रपंथियों ने श्री अरविन्द और बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में निश्चय किया कि कांग्रेस संगठन के जो अधिकार नरमपंथियों के हाथ में हैं उन्हें छीन लिया जाए और कांग्रेस को सक्रिय आंदोलन में प्रवृत किया जाए। 1907 में सूरत में उन्हें यह अवसर मिला। दक्षिण के उग्रपंथियों ने तब तक मद्रास जनसंघ नाम से अपने लिए एक मंच की स्थापना भी कर ली थी। संघ ने निश्चय किया कि मद्रास से सौ कार्यकर्ता तैयार करके अपनी शक्ति को विस्तृत किया जाए। संघ के आग्रह की प्रतिक्रिया अच्छी हुई। सूरत में श्री अरविन्द की अध्यक्षता में उन सबने एक बैठक की। अरविन्द के सुझाव के अनुसार उन्होंने निश्चय किया कि अगली बार के कांग्रेसाध्यक्ष के चुनाव के अवसर पर वे नरमपंथियों को मात देने की कोशिश करेंगे। खुले

अधिवेशन के अवसर पर नरमपंथियों ने रासबिहारी घोष का नाम प्रस्तावित किया लेकिन बाल गंगाधर तिलक ने उसका विरोध किया। उस समारोह में जम कर निरंतर संघर्ष हुए और उसमें कुर्सियां और जूते तक हवा में उछाले गए। बैठक को आकस्मिक ढंग से खत्म कर देना पड़ा। बहरहाल उग्रपंथियों ने निश्चय किया कि वे एक अलग बैठक करके भारत माता की सेवा की शपथ लेंगे। श्री अरविन्द ने ही उस बैठक की भी अध्यक्षता की। इन तूफानी घटनाओं ने भारती पर एक अविस्मरणीय प्रभाव छोड़ा। सूरत से लौटने के बाद भारती ने 'अवर कांग्रेस टुअर' नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित की। यही वह दौर था जिसमें भारती ने तिलक को राजनीतिक नेता और द्रष्टा के रूप में देखा :

उन्होंने एक मजबूत दुर्ग बनाया
उसका नाम था शिक्षा
उन्होंने खोदी उसके चारों ओर खाई
जिसमें बहता था विचार का सोता
उन्होंने एक मंदिर उठाया
जिसका नाम था स्पष्ट बात
और इसी पर उन्होंने लहराया
स्वतंत्रता का झंडा।

लाला लाजपत राय की बंदी स्थिति की तस्वीर ने भारती को काफी गहराई के साथ झकझोरा :

तुम क्षितिज पर चल रहे हो
ओ सूरज की किरणों, हमारे पास आओ
और जीवनदायिनी ज्योति दो।
तुम्हें बंदी करके रखा गया है
ओ सूरज की किरणों, हमारे पास आओ
और जीवनदायिनी ज्योति दो।
तुम्हें बंदी करके रखा गया है
एक विदेशी कारा में
लेकिन तुम हमारे मर्म के पास हो।
ओ लाजपत ! वे कैसे रोक सकते हैं
तुम्हें, हमारे भीतर विकसित होने से ?

भारती ने नरमपंथियों में से किसी को भी अपने व्यंग्य से बख्शा नहीं। गोखले पर उनका प्रहार सबसे भयंकर था। इसी बीच एक घटना घटी और उसके बाद देशभक्ति के उनके गीतों की पुस्तक प्रकाशित हुई। प्रकाशन के साथ ही साथ वे तमिलनाडु में प्रसिद्ध हो गए।

राजनीति में बढ़ती हुई दिलचस्पी ने उन्हें 'स्वदशमित्रन्' में एक अनुरोध प्रकाशित

करने की प्रेरणा दी। उन्होंने लिखा कि क्योंकि वह देशभक्ति के गीतों का एक संग्रह प्रकाशित करना चाहते हैं अतः लोग उसके लिए रचनाएं भेजें। जवाब के रूप में चुप्पी मिली और एक भी रचना बाहर से नहीं आई। इसका कारण या तो यह था कि तमिल में ऐसे कवि ही नहीं थे जो शास्त्रीय रूढियों से मुक्त सहज ढंग की देशभक्तिपूर्ण कविताएं लिख सकते या यह कि लोग ऐसी कविताएं लिखने के भयंकर परिणामों से भयभीत थे। संकल्प की अपनी विशिष्ट मुद्रा में उन्होंने खुद ही संग्रह के लिए गीत लिखने शुरू किए। पुस्तक प्रकाशित करने के लिए उनके पास धन नहीं था लेकिन इसके बावजूद वे मनदायम बंधुओं से आर्थिक सहायता की बात नहीं करना चाहते थे। कारण यह था कि वे लोग पहले से ही इस तरह की भारी सहायता के लिए प्रतिबद्ध हो चुके थे। एक दिन उन्होंने मद्रास के एक युवा प्रकाशक जी. ए. नटेसन से संग्रह छपवाने की अपनी इच्छा व्यक्त की। नटेसन ने उन्हें बताया कि वैसे सग्रह को प्रकाशित करने-का साहस केवल वी. कृष्णस्वामी अय्यर ही कर सकते हैं। 'अय्यर के नाम की चर्चा ने भारती की आशाओं पर पानी फेर दिया। कृष्णस्वामी अय्यर मद्रास के एक प्रमुख वकील होने के साथ साथ खुद भी एक नरमपंथी और गोखले के मित्र थे। 'इंडिया' के अंकों में भारती ने बार बार उनकी आलोचना की थी। "वे मुझसे बहुत ही नाराज हैं, उनके पास जाने में कोई लाभ नहीं होगा," भारती ने कहा। लेकिन नटेसन ने भारती को किसी तरह यह विश्वास दिला ही दिया कि अय्यर असल में बहुत ही भले व्यक्ति हैं। शाम को वे लोग लज में स्थित उनके निवास स्थान पर पहुंचे। सुहानी गोधूलि की बेला थी और अय्यर बाहर लान में बैठे हुए अपने किसी मित्र के साथ बातचीत में व्यस्त थे। प्रणाम के उत्तर में इन लोगों का स्वागत करते हुए उन्होंने नटेसन से पूछा कि दूसरा व्यक्ति कौन है। नटेसन ने मुस्कराते हुए कहा कि उनका वह मित्र एक कवि है और इसलिए आया है कि अपने कुछ गीत सुनाकर उनका मनोरंजन करे। अय्यर ने स्वीकृति में सिर हिला दिया और नटेसन ने भारती से गाने का आग्रह किया। भारती ने तुरत ही अपनी मधुर आवाज में 'वंदेमातरम्' शीर्षक अपना गीत शुरू कर दिया। उनकी स्वर माधुरी अत्यंत तन्मयता के साथ फूट रही थी :

सच है कि यह हजारों जातियां
फल-फूल सकती हैं
लेकिन विदेशी के लिए यहां
कोई जगह नहीं है
एक मां के पुत्र परस्पर लड़ सकते हैं,
झगड़ सकते हैं
लेकिन तब भी वे भाई हैं।
भाई।

गीत सुनने से कृष्णस्वामी अय्यर को जो खुशी हुई उस पर वे काबू नहीं पा सके। भारती ने उसके बाद 'भारत को प्रणाम' और 'भारत भूमि हमारी' शीर्षक गीत गाए। नयी

खोज के रूप में भारती को पाकर अय्यर प्रसन्नता से विह्वल हो उठे। उन्होंने कहा, "इतने अद्भुत गीतों को तुम अचार की तरह क्यों डाले हुए हो ? तुम्हें इन गीतों का स्कूलों और संगीत की शिक्षा से संबद्ध लोगों के बीच प्रचार करना चाहिए। तुमने इन्हें छिपा कर क्यों रखा है ?" नटेसन ने धीरे से अय्यर को बताया कि गीतों के प्रचारित न हो पाने का कारण आर्थिक है। उदार वकील ने तत्काल ही भारती को सौ रुपये का एक चेक देने के साथ यह भी कहा कि वे उनके तीनों गीतों को खुद ही प्रकाशित करके मुफ्त वितरित कराएंगे। अय्यर की उस बात से दोनों मित्र एक विचित्र धर्मसंकट में पड़ गए। लेकिन तभी नटेसन ने अय्यर को निर्भीक ढंग से यह भी बता दिया कि उन गीतों के रचयिता भारती हैं जो 'इंडिया' के संपादक हैं। उस जानकारी से अय्यर के चेहरे पर किसी तरह के संकोच का भाव नहीं पैदा हुआ और मुस्कराते हुए उन्होंने अपने आश्वासन को पुनः दुहराया और कहा

"अच्छा। तो तुम सुब्रह्मण्य भारती हो ? लेकिन क्यों ? इन गीतों को सुनने के बाद मैं देख सकता हूं कि तुम में गहरी और वास्तविक देशभक्ति है। इसके पहले तक तो मै यही समझता था कि तुम भी उन्हीं पागल उग्रपंथियों में से एक हो।"

अय्यर ने उन तीनों गीतों की 15,000 प्रतियां लोगों में मुफ्त वितरित कराई। यह पहला अवसर था जब भारती ने अपनी रचनाओं को पुस्तिका के रूप में देखा। वे तीनों गीत भारती के देशभक्ति के गीतों में सचमुच ही सर्वोत्कृष्ट हैं। 'वंदेमातरम्' में उन्होंने जातिप्रथा की बुराइयों की धज्जी उड़ाई है। शेष दो गीतों में उन्होंने भारत के गौरवपूर्ण अतीत, उसकी भव्य संस्कृति और उसके विराट भौगोलिक व्यक्तित्व का चित्रण किया है। उन गीतों में अभिव्यक्ति की सादगी के साथ साथ भारतीय निजत्व का, अपनेपन का, स्पष्ट बोध होता है। 'भारत को प्रणाम' शीर्षक से उनकी कविता का यह अंतिम अंश :

यहीं, यहीं वह धरती है
जहां हमारी माताओं ने
प्राप्त किया प्रौढ़त्व
विवाह कर
अपने अपने बसा लिए घर
यहां, हमारे मंदिर हैं फैले हुए चारों ओर
सीख देते रहे पूर्वजों को आत्मा के सत्य का
और जब उनका निधन हुआ, उनकी
वेदी पर आईं उनकी संतानें
और प्रज्वलित किए रखा उस अग्नि को।
मैं गाता हूं उन्हीं की स्मृति में
मां, मैं नतमस्तक हूं तुम्हारे चरणों में, मां !
नतमस्तक हूं तुम्हारे चरणों में ! मां !

अगले वर्ष भारती ने देशभक्ति की कविताओं का एक मोटा संग्रह प्रकाशित किया। 1909 में एक अन्य संग्रह 'जन्मभूमि' शीर्षक से प्रकाश में आया। उनकी अच्छी बिक्री हुई। उन गीतों को संगीत की धुन दी गई और वे लाखों तमिल भाषियों द्वारा गाए जाने लगे। कुछ ही दिनों के भीतर यह परंपरा पड़ गई कि जब कोई राजनीतिक समारोह या बैठक हो तब उसका श्रीगणेश भारती के गीतों से हो। उन कविताओं ने व्यापक पैमाने पर तमिलनाडु के लाखों-करोड़ों लोगों के मन में स्वतंत्रता, देशभक्ति और जनतंत्र की विचारधारा को प्रवाहित किया।

पांडिचेरी में निर्वासन

1908 में भारतवर्ष में विस्तृत परिमाण पर राजनीतिक अशांति रही। पंजाब में लाला लाजपतराय और अजित सिंह को निर्वासन का दंड मिला और उसकी वजह से दोनों जनता की निगाह में बहुत ऊंचे उठकर वीरोचित सम्मान के अधिकारी हुए। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक ने गणेशपूजा और शिवाजी पर्व का पुनरायोजन किया। दोनों ही समारोहों ने जनसामान्य में अभूतपूर्व जोश और उत्साह पैदा किया। बंगाल में श्री अरविन्द का नाम हर एक की जबान पर था। अलीपुर बमबारी के सिलसिले में उनकी गिरफ्तारी हुई थी और मुकदमे की सुनवाई हो रही थी।

वी. ओ. चिदम्बरम पिल्लै ने 'स्वदेशी स्टीम नेविगेशन' कंपनी को जन्म दिया। भारती ने उसके लिए चंदा इकट्ठा करने में उनकी सहायता की। उस काम में बुरी तरह घाटा हुआ और पिल्लै को जेल में बंद कर दिया गया। लेकिन घाटे के बावजूद कंपनी खोलने के राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति हो गई थी। उसके जरिए ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति को प्रभावशाली चुनौती दी गई थी, हालांकि वह चुनौती महज कुछ ही महीनों की थी। राष्ट्रवादियों ने अपनी सफलता और आत्मविश्वास का बोध कराने के लिए 'स्वतंत्रता दिवस' के रूप में एक समारोह किया। एच. डब्ल्यू. नेविंसन ने अपनी पुस्तक 'द न्यू स्पिरिट इन इंडिया' में चर्चा करते हुए लिखा है कि ट्रिप्लिकेन-बीच पर उपस्थित होने वाली जनता इन बैठकों के दौरान कितने आदर्श आचरण का परिचय देती थी। भारती उनके लिए आकर्षण के प्रधान केंद्र थे।

ब्रिटिश सरकार धीरे धीरे भयभीत होती जा रही थी। उसने अपना संतुलन खो दिया और नियमित रूप से आतंक फैलाने पर उतर आई। तिलक और उन जैसे अन्य नेताओं को गिरफ्तार करके जेलों की एकांत कोठरियों में नजरबंद कर दिया गया था। यहां तक कि 'स्वदेशमित्रन्' के जी. सुब्रह्मण्य अय्यर जैसे नरमपंथी व्यक्ति को भी जेल में डाल दिया गया था। तिलक और अरविन्द जैसे नेता को बहुत खतरनाक समझा जाने लगा था क्योंकि उनका लेखन अराजकतावादी था। दक्षिण भारत में उग्रपंथियों का सबसे महत्वपूर्ण पत्र

'इंडिया' था जो भारती द्वारा संपादित हो रहा था। इस बात को पहले से बताने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि उन्हें किसी भी समय पकड़ा जा सकता है। दरअसल, पुलिस का एक सिपाही 'इंडिया' के कार्यालय पर गिरफ्तारी के वारंट के साथ दिखाई भी दिया था, लेकिन उसी वक्त भारती कार्यालय से बाहर जा रहे थे। सिपाही ने उन्हें वारंट दिया, उसे पढ़ने के बाद सच्चाई को दूसरे पहलू से व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "क्या यह वारंट संपादक के लिए है ? मैं वह नहीं हूं।" और यह कहते हुए वे वहां से चले गए। उनके कथन में सच्चाई भी थी क्योंकि 'इंडिया' में संपादक की जगह पर केवल एम. श्रीनिवासन का नाम प्रकाशित होता था। बाद में उन्हें पकड़ कर जेल में डाल दिया गया।

अब वास्तविक समस्या सामने आई। भारती और उनके मित्र जानते थे कि जल्द ही उनके नाम भी गिरफ्तारी का वारंट आएगा। मित्रों ने इस बात पर बल दिया कि वे सुरक्षा की दृष्टि से फ्रांसीसी भारत के अंग पांडिचेरी में चले जाएं। उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। जेल जाने का मतलब था कि उनके रचनात्मक लेखन में व्यवधान पड जाता। तमिलवासी इस स्थिति में नहीं थे कि इतना बड़ा बलिदान कर सकें। भारती भी जिद पर आ गए थे। वे भागना नहीं चाहते थे। उनका कहना था कि उद्देश्य चाहे कुछ भी हो, आने वाली पीढ़ियां उन्हें कायर कहेंगी। लेकिन अंततः मित्रों की सलाह कारगर सिद्ध हुई। भारती ने फौरन सैदापेट स्टेशन पर गाड़ी पकड़ी और कुशलतापूर्वक पांडिचेरी पहुंच गए। उनके जाने की कोई सूचना उनकी पत्नी तक को नहीं थी। इस प्रकार वे पहले भारतीय राजनीतिक नेता थे जिन्होंने पांडिचेरी में शरण ली। उनके वहां पहुंचने के बाद तत्काल ही मन्दायम श्रीनिवासाचारियार और सुब्रह्मण्य शिव भी वहां पहुंच गए। कुछ ही दिनों के अंतराल के बाद श्री अरविन्द और वी. वी. सुब्रह्मण्य अय्यर भी राजनीति के निर्वासित व्यक्तियों के रूप में वहां पहुंच गए।

पांडिचेरी में भारती का कोई परिचित नहीं था। श्रीनिवासाचारियार ने कुप्पुस्वामी अय्यंगार के नाम उनका परिचय देते हुए एक पत्र भारती को दिया था और प्रारंभ के कुछ दिनों तक उन्होंने भारती की देखभाल की। उनके पहुंचने के दो दिन के अंदर ही पुलिस को पता चल गया कि वे भाग कर पांडिचेरी पहुंच गए हैं। तुरंत जासूसों का एक दल वहां पहुंच गया और परछाई की तरह उनकी गतिविधियों की निगरानी करने लगा। उन्होंने कुप्पुस्वामी अय्यंगार को डराने-धमकाने की कोशिश की। यहां तक कि फ्रांसीसी पुलिस को भी अपने प्रभाव में लेने की कोशिश की। अय्यंगार की हालत बहुत ही दयनीय थी। वे इतने भले थे कि भारती को वहां से चले जाने का आग्रह नहीं कर सके। लेकिन वे यह जानते थे कि अगर भारती को शरण दिए रहे तो पुलिस उन्हें परेशान करेगी और उसका असर उनके छोटे-से व्यवसाय पर भी पड़ेगा। भारती उनकी परेशानी समझ कर बहुत दुखी होते रहे। इसी बीच भारती की मित्रता एक युवक कन्नन से (पूरा नाम कुवलयूर कृष्णमाचारियार) से हो गई जो 'इंडिया' के एक ग्राहक सुन्दरेश अय्यर के यहां जाया करते थे। अय्यर एक मामूली क्लर्क थे लेकिन भारती की कविताओं से उन्हें बहुत गहरा लगाव

था। उन्होंने फौरन भारती को एक मकान में रख दिया, जहां उन्हें कुछ शांति के साथ रहने की सुविधा मिल गई। पांडिचेरी के प्रवास में शुरू से लेकर आखिर तक कन्नन और सुन्दरेश ने भारती की बहुत सहायता की। कन्नन की स्मरण शक्ति बहुत तीक्ष्ण थी और अक्सर ऐसा हुआ कि जब कभी भारती ने कोई कविता लिखी, उसे सुनने का पहला अवसर कन्नन को ही मिला। भारती खुद भी कन्नन के प्रति बहुत कृतज्ञ थे, क्योंकि उन्होंने उनकी बहुत सेवा की थी। भारती ने अपनी कई कविताओं में उनकी प्रशंसा भी की। अपनी 'भारतीः 66' लंबी कविता में आदमियों में मोती जैसे विशिष्ट कन्नन का चित्र खींचते हुए उन्होंने लिखा है :

'उनका रास्ता प्राचीन सच्चे विश्वास का है'

बाद के वर्षों में उसी कन्नन ने भारती की रक्षा एक पागल हाथी से की थी। सुन्दरेश अय्यर को भारती की मित्रता की महंगी कीमत चुकानी पड़ी, लेकिन उन्होंने सारी परेशानी चुपचाप झेल ली। उनकी नौकरी छूट गई और वे भयंकर कठिनाइयों के शिकार हो गए। उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की, बल्कि भारती की मदद के लिए पत्नी के आभूषण तक गिरवी रख दिए। भारती के किसी भी जीवनचरित में इन दो मित्रों का स्थान बहुत ही सम्मानजनक है।

'इंडिया' को मद्रास से प्रकाशित करना निरंतर बहुत कठिन होता जा रहा था। भारती के मद्रास से गायब होने के बाद ब्रितानी पुलिस पहले से बहुत अधिक सतर्क हो गई। उसने 'इंडिया' के स्वत्वाधिकारियों को सताना शुरू कर दिया। मन्दायम बंधुओं ने भी फैसला किया कि वे पांडिचेरी चले जाएं जहां भारती हैं। उन्होंने किसी प्रकार छपाई मशीन को वहां पर चुपके से ले जाने और डुप्ले में किराये के एक मकान में उसे बिठाने की व्यवस्था कर ली। भारती के संपादन में साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन पुनः प्रारंभ हो गया। इस तरह सरकार को कुछ दिनों के लिए पूरी तरह चकमे में डाल दिया गया। पांडिचेरी में रहने वाले साहसी देशभक्तों ने यह व्यवस्था भी कर ली कि 'इंडिया' की प्रतियां तमिलनाडु के कोने कोने तक भेज सकें। ब्रितानी क्रोध की पृष्ठभूमि में जब इस पर विचार किया जाता है तब यह बहुत आश्चर्यजनक लगता है, क्योंकि वहां पर पत्रिका को कभी भी विज्ञापन की कमी नहीं हुई। आर्थिक दृष्टि से 'इंडिया' इतना संपन्न हो गया कि मन्दायम बंधुओं ने पांडिचेरी से 'विजय' नामक एक दैनिक पत्र प्रकाशित करने का निर्णय किया। भारती को ही दैनिक का भी संपादक बनाया गया। निर्वासन की अवस्था में रहने वाले उस गुट ने उन पत्रों के अलावा 'कर्मयोगी' नामक तमिल की एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू कर दिया। 'बाल-भारती' नामक साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र का भी प्रकाशन मद्रास की जगह पांडिचेरी से ही होने लगा। इसके अलावा कार्टूनों की एक पत्रिका भी 'चित्रावली' नाम से प्रकाशित करने की योजना बनाई गई। पत्रों की आर्थिक संपन्नता और व्यापक लोकप्रियता भारत के ब्रितानी शासकों को खटकी और उन्होंने आर्थिक दंड देने का निर्णय किया। भारती द्वारा संपादित 'इंडिया' तथा अन्य पत्रों पर भारत में प्रतिबंध लगा दिया

गया। प्रतिबंध हटवाने के ख्याल से स्वत्वाधिकारियों ने संपादक की जगह भारती की बजाय वेंकट आर्य का नाम देना शुरू किया, लेकिन उसका कोई लाभ नहीं हुआ। 12 मार्च, 1910 का अंक 'इंडिया' का अंतिम अंक था। उसके बाद उसका प्रकाशन खत्म हो गया। कुछ दिनों में अन्य पत्रों को भी बंद कर देना पड़ा। 1910 के अंत में भारती को सबसे बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ा। वह चुनौती थी नौकरी की। यानी उन्हें इस तरह मजबूर कर दिया गया था कि उनके पास करने को कोई काम ही नहीं रहा।

भारती हताशा से टूटने वाले ही थे कि पांडिचेरी में एक नयी शक्ति का आगमन हुआ और उसने उन्हें खत्म होने से बचा लिया। वह शक्ति थी श्री अरविन्द की जो अप्रैल, 1910 में पांडिचेरी में आ गए। उन्हें अलीपुर के केंद्रीय जेल में इसलिए डाल दिया गया था क्योंकि उन पर यह संदेह था कि वे बंगाल के बम निर्माता आतंकवादियों से संबद्ध हैं। जिन दिनों वे एकांत में नजरबंद थे, उन्हें सर्वव्यापी नारायण का बहुत ही रहस्यपूर्ण ढंग से आभास हुआ। योग में उनकी दिलचस्पी पहले से ही थी। नारायणदर्शन ने उन्हें अध्यात्म की ओर अग्रसर किया। जेल से उन्हें सम्मान के साथ मुक्त कर दिया गया था, लेकिन वहां से निकलने के बाद वे पुनः राजनीति के क्षेत्र में नहीं गए। उन्होंने सीधे पांडिचेरी की राह पकड़ी और योगी का जीवन बिताना शुरू कर दिया। इसकी परिणति यह हुई कि उन्हें विश्व में 'अतिमानव' की प्रतीति अनुभव हुई। उनके आसपास तेजी से एक आश्रम विकसित हो गया। लेकिन 1910 में भी अरविन्द को उग्रपंथियों का ही प्रवक्ता माना जाता था। उनके पांडिचेरी पहुंचने से स्वयं भारती को और मन्दायम बंधुओं को निश्चय ही प्रसन्नता हुई होगी। उन्होंने नगर में उनके स्वागत और आवास की व्यवस्था की। पांडिचेरी आने के बाद अरविन्द ने अपने को राजनीति से एकदम अलग कर लिया। लेकिन उस वक्त की सरकार ने उनके व्यक्तित्व के इस आंतरिक परिवर्तन पर विश्वास नहीं किया और यह कहना शुरू किया कि योग एक नाटक है और उनका उद्देश्य कुछ और है। सरकार ने उनकी मासिक पत्रिका 'आर्य' में आंदोलन और अशांति के तत्व खोज निकालने की कोशिश की। पांडिचेरी में हर स्थल पर मौजूद जासूस उनकी गतिविधियों की निगरानी रखते। इस गुट में शामिल होने वाले दूसरे व्यक्ति थे, वी. वी. एस. अय्यर। श्री अय्यर तमिलनाडु की राजनीति में अत्यंत गर्म विचारों वाले माने जाते थे। भारती, अय्यर और अरविन्द भारतीय और पाश्चात्य साहित्य की गहराइयों में उतरते रहे। भारती और अरविन्द दोनों ही कवि थे, जब कि अय्यर एक जाने-माने कहानीकार। श्रीनिवासाचारी एक सहानुभूतिपूर्ण श्रोता थे। ये चारों पांडिचेरी-बीच पर इकट्ठा होते और वहां साहित्य;दर्शन और रहस्यवाद पर घंटों बातचीत करते।

यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि इस वातावरण में भारती की रचनात्मक तृषा को एक नयी धारा मिली। उनका सामान्य जीवन दुख और दरिद्रता से अभिशप्त था और अक्सर ऐसा लगता कि उसकी वजह से वे हमेशा के लिए टूट सकते हैं, बरबाद हो सकते हैं। सुन्दरेश अय्यर और श्रीनिवासाचारी की सारी उदारता और कृपा वी. रामस्वामी

के सारे साधन और कन्नन की सारी सेवाएं, किसी में भी वह शक्ति नहीं थी कि वे भारती को नियति के पाश से मुक्त कर सकें। लेकिन उसी के साथ साथ उन्हें सान्त्वना देने वाले भी कुछ तत्व थे। भारती का जीवन सचमुच ही आंसू और हंसी दोनों से भरपूर था। जब वे पांडिचेरी में थे तभी उनकी दूसरी पुत्री ने जन्म लिया। जिस वक्त उन्हें पुत्री के जन्म का समाचार मिला, वह कालिदास का 'शाकुन्तलम्' पढ़ रहे थे। इसीलिए उन्होंने पुत्री का नाम शकुन्तला रख दिया। एक अवसर पर तो वह महज संयोगवश बच सके। जिस दिन वह अपना पुराम्‌ मकान बदलकर एक अधिक बड़े और ज्यादा आरामदेह मकान में जा रहे थे, उनका पुराना मकान पास के समुद्र के तूफान के कारण अचानक टूट कर गिर गया। भारती ने उस घटना को अपने एक गीत में जीवित कर दिया। वह गीत उन्होंने ऐसे छंद में लिखा जिसमें सस्वर पाठ के वक्त उठते हुए तूफान का आभास होता है :

कल हम वहां थे
यदि इस वक्त भी वहीं होते
तो आज क्या हुआ होता।
मौत : यहां पर एक जंगली हवा की तरह आई
क्या वह दैवी शक्ति ही नहीं थी
जिसने हमें बचाया !

भारती मकान का नियमित किराया कभी भी नहीं दे पाते लेकिन उसके बावजूद मकान मालिक ने उन्हें कभी परेशान नहीं किया। पांडिचेरी के लोग विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग इस भोले-भाले कवि के प्रति स्नेह का भाव रखते थे। कभी कभी वह स्नेह इतना गहरा होता कि लगता कि वे मूर्तिवत पूजे जा रहे हैं। वी. रामस्वामी नाम के एक उत्साही युवक ने ब्रितानी भारत से चोरी-छिपे सोना मंगवा लेने में भारती की बड़ी सहायता की। पुलिस को चकमा देने के ख्याल से उन्होंने यह व्यवस्था की थी कि लगे कि घी के टिन पहुंचाए जा रहे हैं। चांदी के रुपये उसी टिन के तल में होते थे। उनके एक दूसरे युवक मित्र थे कृष्णस्वामी चेट्टियार जो पास के गांव मुथ्यालेट के बुनकर थे। आर्थिक दृष्टि से वह अत्यंत संपन्न थे। 'कुइलबहु' शीर्षक से अपनी महान कविता की रचना भारती ने चेट्टियार के आमों के बाग में आराम करने के दौरान की थीं। अमृता भी वहीं थी जो अरविन्द आश्रम में रहीं। युवा शिक्षक कनक सुब्बुरत्नम् भी (जिनका प्रचलित नाम भारतीदास है) वहीं थे। भारती के समवयस्कों में स्वामीनाथ दीक्षित, सुब्रह्मण्य प्रोफेसर अय्यर, दूकानदार पोलु मुरुगेसम् पिल्लै और कल्वी शंकर चेट्टियार भी थे। मुरुगेसम् की पत्नी अन्नियम्माल भारती की देखभाल बिल्कुल मां की तरह करती थीं और उनके लड़के भी कवि के प्रति अत्यधिक श्रद्धा से पेश आते थे। यहां तक कि भारती के घर में जो दाई थी, उसके मन में भी कवि के प्रति पर्याप्त स्नेह था। सामाजिक बंधनों को खत्म करने के प्रयास में भारती अक्सर ही दाई के घर में जलपान किया करते। भारतीय समाज के तथाकथित निचले वर्ग में उनके मित्र अच्छी संख्या में थे। उनमें आर. कनकलिंगम, वेणु नायकर और कुछ घुमंतू

साधु भी थे। उन्होंने एक हरिजन बालक कनकलिंगम के यज्ञोपवीत संस्कार का आयोजन अपने बूते पर किया। विश्राम के लिए उन्होंने मुंथुमरी के उस मंदिर का चुनाव किया था जिसमें हरिजन पूजा करते थे। उन्होंने उस देवी को विषय बनाकर कुछ पूजा गीत भी लिखे थे :

जिनके मन दूषित हैं
वे सदा डूबे रहते हैं चिंता में—
मैं नित्य तुम्हारी सेवा करूंगा
तुम्हारी कृपा मुझे मुक्त करेगी।
मधुर तमिल में,
समर्पण की तन्मयता के साथ
मैं शक्ति की विराटता के गीत
गाऊंगा
और भय गायब हो जाएगा
वेदों का दावा है : शक्ति ही कारण है
हम हर तरह की सेवा करेंगे
सभी काम उसी के हैं।

भारती की, तमिलनाडु के घुमंतू साधुओं की दोस्ती के कई दिलचस्प परिणाम सामने आए। भारती ने छोटे कद के योगी कुल्ला स्वामियार, गोविन्द स्वामी और याजपाम स्वामी के आध्यात्मिक कथनों को स्वीकार किया था। 'भारती :66' में कुल्ला स्वामियार की विस्तार से चर्चा है। उनकी गद्य रचनाओं में भी कुल्ला स्वामियार का उल्लेख है। भारती की दृष्टि में कुल्ला स्वामियार भी अमर लोगों में एक हैं :

लोग उन्हें कुल्लास्वामी कहते हैं
देवों के देव एक द्रष्टा
वह अनासक्त हैं; भय को भस्म करके
वह अंतरिक्ष के पार तक पहुंचते हैं
यम को मार कर उन्होंने
विनाश को ही विनष्ट किया है
उन्होंने रख छोड़ी है अपने मुकुट में
ज्ञान की गंगा
वह एक वृक्ष है
जिस पर फैली है प्यार की लता
मानवों में सर्वोच्च,
उनके दमकते चरणों की
करता हूं मैं प्रशंसा।

कुल्लास्वामी से भारती ने राजारामय्यर के मकान में भेंट की थी और प्रश्न किया था कि उनके अस्तित्व का वास्तविक रूप क्या है ?

आप कौन हैं ? क्या है आप की पहचान ?
क्या जानते हैं ? पहने हैं क्यों कोपीन ?
क्यों प्रकाशमान हैं देवों की तरह ?
क्यों खेलते हैं सड़कों पर कुत्तों और बच्चों से ?
क्यों भटक रहे हैं अतीत के उस बुद्ध (गौतम) से ?
ऐसा क्या है कि चमक है आप में
भगवान शिव की ?
अनासक्त क्यों हैं ?
मुझे बताएं वह सब कुछ
जिसका किया है आपने अनुभव या आभास।

स्वामी दौडते हुए पीछे की ओर गए और भारती से तीन चीजों की तरफ इशारा किया। एक गिरी हुई दीवाल, एक सूर्य, और एक कुएं का तला। भारती समझ गए। "तुम्हें अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रख कर दीवाल की तरह अविचलित रहना चाहिए। अगर तुम ऐसा करते हो तो तुम ईश्वर को अपने हृदय में वैसे ही देखोगे जिस तरह कुएं के जल में सूर्य का प्रतिबिंब दिखाई देता है। महज बात करने का कोई लाभ नहीं है। वास्तविक ज्ञान तो अनुभूत प्रसन्नता है। भारती ऐसी कई घटनाओं की चर्चा करते हैं और यहां तक मानते हैं कि उस साधु में मानवातीत शक्ति थी। स्वामी से उनकी जब भी भेंट हुई उन्हें नए ज्ञान की एक किरण मिली। एक बार भारती ने उन्हें पागल की तरह फटे हुए कपड़ों की एक गठरी ले जाते हुए देखा। जब भारती ने उनसे कारण पूछा तो उन्होंने तीखेपन से उत्तर दिया, "जो कुछ तुम अपने भीतर लिए हुए हो उसे मैं अपनी पीठ पर रखे हूं।"

पांडिचेरी प्रवास के दौरान भारती के जीवन में उत्तेजनात्मक अवसरों की कमी नहीं रही। इसका एक कारण भारत की ब्रितानी सरकार के जासूस भी थे; जो उन पर हमेशा निगाह रखते थे। वी. रामस्वामी ने कवि के जीवनचरित में इस तरह की अनेक दिलचस्प घटनाओं की चर्चा की है। भारती के पांडिचेरी आने के दो वर्ष बाद मनियाची स्टेशन पर किसी उग्रपंथी युवक ने तुतीकोरिन के कलक्टर ऐश की गोली मार कर हत्या कर दी थी। सरकार को संदेह था कि भारती और वी. वी. एस. अय्यर का ऐश की हत्या के षड्यंत्र में हाथ है। परिणामस्वरूप पांडिचेरी में इन दोनों के निवास स्थान के इर्दगिर्द जासूसों की नियुक्ति कर दी गई ताकि इनकी गतिविधियों पर निगाह रखी जा सके। तिरुनेल्वेली के एक मित्र ने भारती को एक बार पत्र में लिखा :

"कवियों के शक्तिशाली सम्राट, आपका स्वागत है। आपके भव्य व्यक्तित्व का दर्शन करने तथा आपकी अमृततुल्य कविता को सुनने का फैसला कर जेब में एक भी सिक्का न होने के बावजूद, मैं एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन पर भटकता हुआ पांडिचेरी पहुंच गया

हूं। मैं छिपी हुई अवस्था में हूं लेकिन मैं शाम के सात बजे आपके निवास पर आऊंगा। कृपया बत्ती बुझाए रखें।"

मित्र नियत समय पर पहुंच गए। लेकिन भारती ने सारी बत्तियां जला रखीं थीं और ऊंचे स्वर में 'मारवों के गीत' गा रहे थे। शताब्दियों पहले मारव एक वीर जाति थी लेकिन अब तक आते आते उनमें के बहुत से घुट-सिमट कर कुली बन चुके थे। कुछ ने डकैती का पेशा भी अपना लिया था। उस गीत में क्रोध से भरी हुई चीख है जो ब्राह्मणों और मारवों के पतन की उसी स्वर में निंदा करती है। गीत मारवों के दल द्वारा गाया जाता है और उसमें आत्मग्लानि की अभिव्यक्ति होती है :

हमने कुलियों की तरह जमीन खोदने का काम
शुरू कर दिया
कहां गई हमारी तलवार और हमारी अपार शक्ति
हमारी वह प्रसिद्धि जो कभी आकाश तक गूंजती थी
अब गायब हो चुकी है।
जमीन पर अब सिर्फ हमारी बदनामी रह गई है।

और गीत का अंत यों है :

कुत्तों की तरह की जिंदगी
दूसरों की जमीन पर
दासों की तरह मजदूरी
भेड़ियों जैसी पुलिस
और लालची ब्राह्मण हमारे पीछे हैं।

गाते समय भारती "कुत्तों की तरह की जिंदगी" वाली पंक्ति पर बार बार बल दे रहे थे।

खैर, जासूस ने अपने को दुरुस्त करते हुए घर में प्रवेश किया। शरीर से वह बहुत ही हृष्ट-पुष्ट था और संन्यासी के कपड़े पहने हुए था। उसने नतमस्तक होकर कवि के प्रति गहरी श्रद्धा दिखाई। भारती ने तत्काल ही ताड़ लिया कि असलियत क्या है। खुलकर मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, "ओह, मुझे भय है कि आपने धर्म की अवहेलना की है। नियम तो यह है कि घरवाला ही सम्मान में नतमस्तक हो और संन्यासी उसे आशीर्वाद दे। आपने तो सारे नियम को ही उलट कर रख दिया।" नकली संन्यासी को अपनी भूल का आभास हुआ। लेकिन उसके बावजूद चेहरे को गंभीर बनाकर उसने भारती को लंबी बातचीत में उलझाए रखा। भारती को इस बात से भी बहुत क्रोध आया कि आगंतुक ने बातचीत के सिलसिले में चार भाषाओं का इस्तेमाल किया। उसने श्री अरविन्द से भी परिचय प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। भारती के लिए वह संयम की अंतिम सीमा थी। फूट पड़े, "तुमने अय्यर को देखा है ? तुम नकली संन्यासी हो।"

दूसरे गुप्तचर भी आभूषण विक्रेता, वकील, काव्यप्रेमी और देशभक्त के भेस में भारती

के पास आते रहते। लेकिन उनमें कोई भी उन्हें अपमान की स्थिति में नहीं ला सका। भारती के यहां एक लड़का नौकर था। पुलिस उसे भगा ले जाने में सफल हो गई थी। लेकिन उस लड़के से भी पुलिस को भारती के ख़िलाफ कोई महत्वपूर्ण सूचनात्मक सामग्री नहीं मिली। तब ब्रितानी सरकार ने निर्वासन में रहने वाले देशभक्तों को पकड़ने का एक साहसिक तरीका अपनाया। 1911-12 में कैसर के आक्रामक कार्यो की वजह से फ्रांस की स्थिति बहुत कमजोर हो गई थी। अगादीर में उसके सैबर हवाई जहाजों की हनहनाहट इतनी भयंकर लगने लगी थी कि फ्रांसीसी डर गए। अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए उन्होंने अंग्रेजों से मित्रता करने का निश्चय किया। मित्रता के प्रमाण के रूप में उन्होंने पांडिचेरी में निर्वासित के रूप में रहने वाले भारतीय उग्रपंथियों को गिरफ्तार कराने में अंग्रेजों की मदद की कोशिश की। फ्रांस के राजनीतिज्ञों ने अपने संविधान के विदेशी कानून में संशोधन कर दिया, और इस प्रकार पांडिचेरी में रहने वाले हर विदेशी के लिए जरूरी हो गया कि वह फ्रांसीसी पुलिस के रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करा दे। रजिस्ट्री के प्रार्थना पत्र पर कम से कम पांच आनरेरी मजिस्ट्रेटों से हस्ताक्षर कराना पड़ता था। इसकी वजह से देशभक्तों की स्थिति बहुत नाजुक हो गई। क्योंकि उनके लिए यह बात लगभग असंभव सी थी कि वे पांच मजिस्ट्रेटों द्वारा अपने को प्रामाणित करा सकें। भारती के दिमाग में एक बहुत अच्छा ख्याल कौंधा। वह कालवे शंकर चेट्टियार के मकान पर पहुंचे। श्री चेट्टियार एक आनरेरी मजिस्ट्रेट होने के अलावा पांडिचेरी के प्रसिद्ध नागरिक थे। भारती ने उस विधेयक की बात उनसे कही। उन्होंने सभी देशभक्तों के ठीक ठीक भरे हुए प्रार्थना पत्र भी उनको दिए। उसी दिन, दोपहर के तीन बजे तक चेट्टियार ने सभी प्रार्थना पत्रों पर आवश्यक हस्ताक्षर करा लिए थे और सभी देशभक्त श्री अरविन्द, वी. वी. एस. अय्यर, भारती, तथा अन्य, की फ्रांसीसी थानों में रजिस्ट्री हो गई। यद्यपि यह सारा काम सफलतापूर्वक हो गया, लेकिन उस समस्या ने इन निर्वासितों को बुरी तरह विक्षुब्ध किया। 'जयम उन्दु' शीर्षक अस्वीकारात्मक कविता की रचना भारती ने परेशानी के उन्हीं दिनों में की थी। तमिल शब्दों में खुरदुरेपन की एक भव्यता होती है। उनसे निःसृत शक्ति को देखकर लगता है कि कोई बलशाली मानवेतर अस्तित्व उसके पीछे है जो भारती और उनके मित्रों की रक्षा कर रहा है :

भयभीत मत हो, मन, विजय निश्चित है
स्वतंत्रता हमारी है, इसी क्षण से, यहीं से
मेरे हृदय में शक्तिशाली मां का निवास है
भक्ति के वृक्ष में अमृतफल लगेंगे।
हमारे कंधे, पहाड़ से ऊंचे हैं
वे ढोते हैं मां के सुनहले चरण
आवेग, कर्म और विचार
सब उसी के हैं

यहां धर्म भी है और शक्ति भी।

सन् 1911 की शुरुआत के साथ साथ भारती की पत्रकारिता के सारे रास्ते बंद हो गए। गुप्तचरों ने करीब करीब उन सारे स्रोतों को समाप्त कर दिया था जहां से उन्हें आर्थिक सहायता मिलती थी। भारती जिस सीमा तक निराशा के शिकार हो चुके थे उसमें वे घबराकर कुछ गलत काम भी कर सकते थे। गनीमत थी कि श्री अरविन्द और वी. वी. एस. अय्यर की उपस्थिति के कारण उन्हें एक बौद्धिक प्रेरणा भी मिली और दिन गुजारने के लिए उन लोगों का साथ। उन्होंने पुनः अपने को रचनात्मक लेखन की ओर प्रवृत किया। अपने महत्त्वपूर्ण लेखन का अधिकांश उन्होंने तीन-चार वर्षों में ही पूरा किया। अगर उन्हें निरंतर दरिद्रता की परेशानियों से संघर्ष न करना पड़ा होता तो उन्होंने और अधिक लिखा होता। वास्तविकता यह है कि परेशानियों के ही कारण उन्हें अपनी बड़ी योजनाओं को बीच में ही छोड़ देना पड़ा। 'भारती : 66' भी उन्हीं में से एक थी। कन्नन ने उन परिस्थितियों की चर्चा की है जिनके कारण उस कविता को इतने विराट फलक पर कल्पित करने की प्रेरणा मिली। सुबह के वक्त भारती और कन्नन दोनों ही स्नान के लिए त्यागराज पिल्लै झील जाया करते थे जो नगर से कुछ दूरी पर थी। एक दिन भारती सुबह से कुछ पहले ही उठ गए और कन्नन के मकान पर चले गए। जब उनका परिचय कन्नन की बूढ़ी मां से हुआ तो उन्होंने उनसे सुप्रभात गाने का आग्रह किया। भारती यह नहीं जानते थे कि सुप्रभात क्या होता है। उनकी अज्ञानता की बात सोचकर कन्नन की बूढ़ी मां अपनी मुस्कराहट रोक नहीं पाईं। कन्नन ने उन्हें समझाया कि सुप्रभात एक प्रकार का ऐसा गीत होता है जिसकी रचना विशेष रूप से देवताओं को जगाने के लिए की जाती है और जिसे भोर में ही गाया जाता है। संस्कृत और तमिल दोनों ही भाषाओं में इस प्रकार के गीत हैं। जब वे दोनों झील की तरफ बढ़ने लगे, तभी कन्नन ने तमिल का एक सुप्रभात सुनाया। कुछ दिनों बाद कन्नन के घर पहुंचने पर भारती ने उनकी मां को एक सुखद आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने अपनी प्रिय देवी भारतमाता को विषय बनाकर एक अत्यंत सुंदर सुप्रभात रच डाला था। वही उन्होंने कन्नन की मां को गाकर सुनाया। गीत में प्राकृतिक बिंबों की छटा थी और उसे बहुत ही गहरी निजी आसक्ति के दबाव में लिखा गया था। कन्नन और उनकी मां दोनों ही उसे सुनकर बहुत द्रवित हुए।

सूर्योदय हुआ;
हमारे दुःख समाप्त हुए
और रात की काली छायाएं गायब हो गईं

यह कविता रचनात्मक दृष्टि से अत्यंत प्रौढ़ है। स्वयं भारती को भी उससे संतोष था। एक दिन भारती ने कन्नन से वैष्णव अलवरों के बारे में पूछा। कन्नन ने बताया कि उनकी संख्या बारह थी और उन्होंने लगभग चार हजार गीत गाए थे। भारती ने तत्काल कहा, "ओह, ऐसी बात है ! मैं छह हजार गीत गाऊंगा। यदि उन्होंने 'नलायीर दिव्य प्रबन्ध' (चार हजार पवित्र गीत) की रचना की तो मैं 'छह हजार' लिखूंगा।" यह महज

गर्वोक्ति नहीं थी। उन्होंने संकल्प किया कि अगले चालीस दिनों तक एकदम मौन रहेंगे। उसी के साथ उन्होंने लेखन के महान आयोजन का प्रारंभ कर दिया। विचार यह था कि वे एक लंबी दार्शनिक कविता लिखेंगे जिसमें आध्यात्मिक, रहस्यवादी और काव्यात्मक अनुभवों को वाणी देंगे। कैसी विडंबना है कि दिन प्रतिदिन की परेशानियों के कारण वे अपनी उस इच्छा की पूर्ति नहीं कर सके। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने जिन 66 कविताओं की रचना की उनमें उनकी आध्यात्मिक तुष्टि की सुगंधि व्याप्त है। इन कविताओं में उन्होंने अमरत्व, निर्भीकता और धैर्य संबंधी अपने दृष्टिकोण का अंकन तो किया ही है, उन सार्थक विचार विमर्शों का भी वर्णन किया है जो उनके तथा कुल्ला स्वामियार और अन्य लोगों के साथ हुए थे।

त्यागराज पिल्लै झील के अलावा भारती पांडिचेरी में प्राकृतिक सौंदर्य से बहुत संपन्न दो और स्थलों पर अक्सर जाया करते थे। एक था मुथ्यालपट का आम का बगीचा। वह एक बुनकर का था जहां आराम करने में भारती को बहुत सुख मिलता था। अपने बहुत से गीतों की रचना भारती ने इसी शांत स्थल पर की थी। वहां छायादार वृक्ष थे। चिड़ियों की मधुर चहचहाहट थी। उसी बगीचे में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'कुइल पट्टु' के लेखन का प्रारंभ किया था। सन् 1916 में पांडिचेरी में एक विनाशकारी अंधड़ आया था लेकिन इसे संयोग ही कहना चाहिए कि उससे बगीचे की कोई क्षति नहीं हुई। उस घटना की स्मृति में भारती ने 'बच गया नारियल का जो बाग' शीर्षक कविता लिखी :

पानी के पास नारियल का
छोटा-सा बाग था
उसका स्वामी था एक गरीब व्यक्ति
इसीलिए पवनदेव ने उसे
अपना शिकार नहीं बनाया।

अकेले घूमने के ख्याल से भारती एक जगह और जाया करते थे, पांडिचेरी-बीच पर। बाद के दिनों में तो वे उस स्थल पर घंटों पड़े पड़े श्री अरविन्द और वी. वी. एस. अय्यर की, जिनसे बुद्धि को पोषक सामग्री मिलती थी, बातों का आनंद लेते रहते थे। बच्चों को समुद्र तट पर ले जाकर नहलाने में उन्हें आनंद मिलता। वे उनके साथ बालू पर निर्द्वंद्व भाव से खेलते। कालांतर में अरविन्द ने एकांतवास ले लिया और भारती उनके मूल्यवान साहचर्य से वंचित हो गए। भारत के जिन स्रोतों से उन्हें धन की उपलब्धि होती थी वे भी पूरी तरह समाप्त हो गए थे। भविष्य अंधकार से भरा हुआ था। पांडिचेरी प्रवास के अंतिम दिनों में 'बीच' ही एक ऐसा स्थल था जो उन्हें सुरक्षापूर्ण शरण देता। उस शरणस्थल पर वे बार बार लौटकर जाते और बालू पर पड़े पड़े पूरी की पूरी रात चांद और तारों को निहारते गुजार देते। उनके लेखन में चांद का बिंब बार बार आता है। 'चन्द्रमती' को संबोधित करके उन्होंने एक गीत लिखा है। उनकी एक कहानी का भी शीर्षक 'चन्द्रथीव' (चन्द्रद्वीप) है। अपने एक उपन्यास का नाम भी उन्होंने 'चन्द्रिकायिन कथा' रखा। उनके

गद्य गीतों में दो मानव चरित्रों के दर्शन होते हैं। वे चरित्र पांडिचेरी बीच वाले भारती की ही प्रतिच्छवियां हैं। अपनी एक कविता में वे उस मानव मन की प्रशंसा करते हैं जिसमें दृश्यात्मक सौंदर्य के आस्वादन की क्षमता है :

चांदनी, तारे और हवा को
अपने सामने रख कर, हम
पीते हैं उनका मधु
और जकड लेता है हमें
एक काव्यात्मक उन्माद।
वह आणविक वस्तु जो मन है
हम उसे छोड़ देंगे मुक्त विचरने के लिए।
किसी स्वादिप्ट फल में बंदी मधुमक्खी
गाती है
किसी को अचरज क्यों ?
मन तू अभी चला जा
तारों के मुक्ता-झुंड में शामिल होने के लिए।

पांडिचेरी प्रवास के प्रारंभिक दो वर्ष भारती के जीवन के अत्यधिक उथल-पुथल के वर्ष थे, क्योंकि उन दिनों भी वे 'इंडिया' और 'विजय' का संपादन कर रहे थे। भारती को यह सोचकर बहुत खुशी होती थी कि वे अपनी लेखनी द्वारा भारत की अंग्रेजी सरकार पर प्रहार कर रहे थे। ऐसा कभी नहीं हुआ कि उन्होंने अपने राजनीतिक प्रतिद्वंदियों पर तेजाब न छिड़का हो, लेकिन उसी के साथ उन्होंने सामाजिक सुधार और नारी शिक्षा को समान महत्व दिया। 'समानता', 'काव्य और वास्तुकला' तथा ऐसे ही अन्य अनेक विषयों पर उन्होंने लेख लिखे। पत्रिका के व्यंग्य चित्र वाले अनुभाग का निर्देशन उन्होंने खुद अपने हाथ में ले रखा था। उनके सामने पत्रिका को ब्रितानी भारत में चोरी-छिपे भिजवाने और वहां से उसी तरीके से धन मंगाने की भी समस्या थी। वहां पर उन्होंने अपने सहधर्मी देशभक्तों, पांडिचेरी के सहानुभूतिशील नागरिकों और तमिल के घुमक्कड़ साधुओं से मित्रता की थी। जीवन भरा-पूरा था। उन्होंने अफीम खाने की खतरनाक आदत भी छोड़ दी थी और इससे उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ था।

लेकिन 1910 के पूर्वार्द्ध की समाप्ति के बाद के दिनों में भारती एकदम बेरोजगार हो गए। ब्रितानी सरकार की कुचल डालने वाली नीति सख्ती की अंतिम सीमा पर पहुंच गई थी। संशोधित प्रेस विधेयक के कारण बहुत-सी देशभक्त पत्रिकाएं खत्म हो गईं। भारती द्वारा संपादित पत्रों का प्रकाशन भी विवश होकर बंद कर देना पड़ा। भारती के लिए बेकार होने का मतलब था बेचैनी, अभिशाप की जकड़ और अफीम की आदत की पुनरावृत्ति। इस सांघातिक अवसर पर अरविन्द और वी. वी. एस. अय्यर की मित्रता ने ही उन्हें त्राण दिया। सचमुच 1910 और 1913 के बीच के वर्ष उनके पांडिचेरी के जीवन के रचनात्मक

लेखन के वर्ष रहे। पहले दो वर्ष योजनाओं का खाका बनाने या तैयारी में बीते। अरविन्द ने उन्हें वैदिक ऋषियों के रहस्यवादी गीतों और संस्कृत के मान्य प्राचीन ग्रंथों की ओर प्रवृत किया। तत्काल ही भारती की वास्तविक प्रकृति,उनकी काव्य रचना की प्रकृति हरी-भरी हो उठी और उसमें से वसंत के फूल अपनी ताजगी और सुगंध के साथ बहुतायत,से खिल उठे। अनुवाद के रूप में वेद ऋषिकालीन कविता उनका पहला प्रयास था। उसके बाद उन्होंने पतंजलि के 'योगसूत्र' और 'भगवद्‌गीता' का अनुवाद किया। कुछ चुने हुए पूजागीतों के अनुवाद के अलावा, उन्होंने वैदिक ऋषियों की कविता की एक लंबी परिचयात्मक भूमिका भी लिखी। पतंजलि के 'समाधि पथ' के भारती के अनुवाद को अरविन्द ने बहुत श्रेष्ठ माना। गीता का उनका अनुवाद अब तक अद्वितीय माना जाता है। उनकी 'परिचयात्मक भूमिका' भी गद्य के क्षेत्र में एक उपलब्धि बन गई है।

सन् 1912 के पूरे वर्ष में भारती ने बिना कोई अवकाश लिए बहुत काम किया। यही वह वर्ष था जिसमें उन्होंने अपनी जीवन की तीन महान रचनाओं का प्रणयन किया। 'कन्नन पट्टु' के गीत गहरे समर्पण की मनस्थिति से पैदा हुए हैं। 'गीता' का अनुवाद करते हुए उनकी कल्पनाशक्ति ने कृष्ण के व्यक्तित्व की गहराइयों में निश्चय ही प्रवेश किया होगा, जिसका दर्शन महाभारत में होता है। जिस तरह अलीपुर जेल में श्री अरविन्द ने नारायणदर्शन किया था उसी तरह भारती को भी कई बार कृष्णदर्शन हुआ जिससे वे अभिभूत हो गए। कृष्ण को उन्होंने प्रेमी, मित्र, पत्नी, बालक, माता, दास और अंतत: मुक्तिकर्ता सभी रूपों में देखा। 'पांचाली सप्तम्' महाकाव्य की रचना इसी का परिणाम थी। शेली की तरह भारती ने भी अतीत को वर्तमान के साथ गूंथा। भारतीय देशभक्तों ने पाडवों की तरह समझौते की आत्मग्लानि से भरी हुई नीति पर चलना शुरू कर दिया था। कुछ थोड़े से सक्रिय उग्रपंथी थे जिन्हें संघर्ष स्थल से हटाकर या तो जेलों में ठूंस दिया गया था या निर्वासित कर दिया गया था। ऐसी स्थिति में बेड़ियों में जकड़ी हुई भारतमाता के सामने कौन-सी आशा शेष थी ? कौरवों के दरबार में पड़ी द्रौपदी भारतमाता ही थी। भारती यह उम्मीद करते थे कि जिस तरह द्रौपदी ने अकेले ही अपना अस्वीकारात्मक किंतु दृढ़ रुख अपनाकर मुक्ति पा ली थी उसी तरह भारत भी अंततः अपने ही प्रयत्नों से विजयी होगा। वह एक ऐसा विराट दृश्य है जिसमें अर्थों के अनेक आयाम गर्भित हैं, और भारती ने उस समस्त क्रियाकलाप के एक एक क्षण का उपयोग किया है।

क्रमबद्ध गीत, एक महाकाव्य या एक लंबी कथात्मक कविता ? नहीं 'कुइल पट्टु' काव्य विधा के किसी भी चौखटे में सीमित नहीं हो पाता। तब ? क्या यह कोलरिज के 'कुबला खां' की तरह कोई स्वप्न सृष्टि है ? या एक विनोदी लेखक का हल्का-फुल्का प्रयास ? या भस्म कर डालने वाले किसी व्यंग्य की छिपी हुई काट ? या एक ऐसा काव्यात्मक रहस्य जिसमें प्रवेश ही न किया जा सके ? भारती ने खुद ही एक कोयल के बैल से प्यार करने, तथा एक बंदर और कवि की कहानी के माध्यम से हमें एक आह के साथ चिढ़ाया है :

मैंने अनुभव किया है कि
कल्पना ने मुझे छला
गीतों की मादकता के द्वारा
कुंजों की कथा, कोयल और प्रेम का व्यापार।
ओ तमिल कवि, यदि यह मिथ्या कथा ही हो तो भी क्या
यदि सम्भाव्य हो इसके द्वारा करना दार्शनिक विवेचन
तो क्या तुम
ऐसे विवेचन का नहीं करोगे प्रयास ?

ऊपर की ये पंक्तियां निश्चय ही पाठक और समालोचक दोनों ही के लिए चुनौती हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि 1912 में इस लंबी कविता की रचना के दौरान वे काफी गंभीर विचारों में डूबे हुए थे। अपनी रचनात्मक अंतर्दृष्टि की उपलब्धि के विचार से उन दिनों वे शिखर पर थे। इन कामों के अलावा, भारती ने एक स्वतंत्र वृत्त पत्रकार की हैसियत से भी काम किया और 'आर्य' (संपादक : श्री अरविन्द) और 'ज्ञानभानु' (संपादक : सुब्रह्मण्य शिव) नामक पत्रिकाओं में अपनी रचनाएं देते रहे। 'ज्ञानभानु' में उनके आत्मकथात्मक उपन्यास 'चिन्न शंकरन कथा' के छह अध्याय प्रकाशित हुए थे। उसमें लेखक के नाम की जगह उन्होंने 'सावित्री' का छद्मनाम दिया था। एक युवक प्रकाशक पर्ली एस. नेल्लयप्पार के अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप उनकी कुछ रचनाएं पुस्तक की शक्ल में भी सामने आईं। लेकिन उनकी रचनाओं का बहुत बड़ा अंश उनकी मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक पाडुलिपि के रूप में ही पड़ा रहा।

समय खंड की दृष्टि से कोई लेखक चाहे जितने लंबे अरसे तक अपने लेखन-कर्म में व्यस्त रहे, आर्थिक दृष्टि से वह लाभकारी नहीं होता है। दोनों वक्त की रोटी की समस्या विकट थी और इसकी वजह से वे हताश होते गए। 1915 तक पहुंचते पहुंचते उनका सारा धैर्य जवाब दे चुका था। यदि उनका परिवार अभी तक जीवित बचा रह सका था तो उसका कारण यह था कि पुराने पत्र 'स्वदेशमित्रन्' से तीस रुपया माहवार की नियमित पेंशन मिलती रही थी। पत्र के मालिक रामस्वामी अय्यर के मन में भारती की कविताओं के प्रति बड़ा मोह था, अतः इस बात का ख्याल किए बिना कि भारती उन्हें रचनाएं देते हैं या नहीं, वे पेंशन की राशि नियमित रूप से भेजते रहे। लेकिन पेंशन की राशि बहुत जल्द ही खर्च हो जाती, क्योंकि यदि कोई मांग बैठता तो उनके पास जो कुछ भी होता उसे दे देते। इस तरह मित्रों द्वारा उपहार में दिए गए मूल्यवान वस्त्र तक वे पांडिचेरी के इक्के तांगे वालों को दे देते। पत्नी उनका तर्कपूर्ण भाषण सुनकर निराश हो जाती। वे कहते, "वह उसे पहनना चाहता था, लेकिन अफसोस कि वह उसे खरीद नहीं सकता था। चेल्लम्मा, तुम्हीं बताओ, क्या वह खरीद सकता था ?" उनकी इस आदत से चेल्लम्मा को बहुत दुख उठाने पड़े। प्रमाण के लिए एक घटना सामने है: एक दिन चेल्लम्मा आंगन में चावल साफ कर रही

थीं। किसी काम के सिलसिले में वे चौके के भीतर चली गई। भारती वहीं बैठे बैठे 'स्वदेशमित्रन्' के लिए कोई रचना लिखने की कोशिश कर रहे थे। वापस आने पर चेल्लम्मा ने देखा कि भारती ने बहुत-सा चावल फर्श पर फेंक दिया था। बीसों गौरैया फुदक फुदक कर चावल के बिखरे हुए दानों को चुन रही थीं और वे उन्हें देखकर फूले नहीं समा रहे थे। क्योंकि इस तरह की बरबादी उन लोगों के बूते के बाहर थी, अतः चेल्लम्मा पहले तो बहुत नाराज हुई और फिर बुरी तरह आंसू बहाने लगीं। चेल्लम्मा के दुखी होने से भारती एकदम सिटपिटा गए। उन्होंने कहा, "चेल्लम्मा, आओ, इन गौरैयों की तरफ देखो। ये कितनी प्रसन्न हैं ! हम खुद भी, क्यों न उन्हीं की तरह हो जाएं।" मगर अफसोस कि वे दोनों उन गौरैयों की तरह प्रसन्न नहीं हो सकते थे। वे स्वतंत्र पक्षी न होकर बेडियों में जकड़े हुए मनुष्य थे। अपने भीतर ही बंदी होने की भावना ने भारती को 'गौरैया' पर एक अत्यंत सुंदर गीत लिखने की प्रेरणा दी :

> ओ ! तुम भी अपने बंधनों को तोड़कर
> इस फुदकती गौरैया की तरह
> मुक्त विचरो।
> घूमो सीमाहीन अंतरिक्ष में
> लहराती हवाओं के आर-पार तैरो
> प्रकाश की उस अक्षय मदिरा को पियो
> जो नित्य बहती रहती है नील आकाश से।
> खुशी में चहचहाना और प्यार करना
> खतरों की राहों से परे नीड़ बनाना
> अंडों से निकले हुए बच्चों की पंखों से रक्षा करना
> उन्हें प्यार से चुगाते हुए सुख का अनुभव करना
> आंगन से, कटे हुए खेतों से
> दानों को चुन-चुन कर लाना
> और इकट्ठा होकर दावत मनाना
> फिर अचरज की कथाएं कहना, गाना
> और सो जाना
> और फिर भोर में उठना
> गुनगुनाते हुए।

भारती के पांडिचेरी के अंतिम तीन वर्ष अत्यंत कठिनाइयों में बीते। दरिद्रता और बेरोजगारी का मतलब ही यह था कि वे अफीम की शरण में संताप ढूंढ़ लें और उसके अनिवार्य परिणाम, अस्वस्थता, को झेलें। उनकी पहली पुत्री बनारस में थी, लेकिन पत्नी और दूसरे बच्चे का ही खर्च चला पाना बहुत कठिन था। एक ऐसा अवसर भी आया जब उनका बच्चा बुरी तरह बीमार था और उनके पास डाक्टर को फीस देने के भी रुपये नहीं

थे। सारी की सारी रात वे 'शक्ति, शक्ति' कहते हुए गुजार देते। संभवतया आर्थिक कठिनाइयों के ही कारण भारती अंततः भारत में वापस आ गए। उनका ख्याल था कि रोज रोज अपने प्रिय व्यक्तियों को दुख में देखते रहने से कहीं ज्यादा अच्छा है कि कारागार में अकेले दुख उठाया जाए। सन् 1915 की उनकी डायरी के जो अंश उपलब्ध हुए हैं उनमें दरिद्रता का बहुत विस्तृत वर्णन है। उसे पढ़ने से पता चलता है कि वे कितने अडिग आदर्शवादी थे, उनमें कितनी मानसिक शक्ति थी, कितना अविचल विश्वास था, जिसके बल पर अंधड़ों से टकराते हुए भी उन्होंने मकान को गिरने से रोके रखा। उनकी डायरी में यह चर्चा भी है कि बुखार की वजह से उनमें जो कमजोरी आ गई थी उसे दूर करने के लिए वे कितने इच्छुक थे। उम्र के उस दौर में जब कि व्यक्ति बहुत हट्टा कट्टा होता है, वे अस्वस्थ हो गए और उनकी बीमारी हफ्तों चलती रही। डायरी में जो कुछ भी लिखा गया है वह कवि का स्वयं से एक वास्तविक आलाप है, और वह भी विराट मां की उपस्थिति में। दरिद्रता के भयंकर दिनों में भी भारती ने कभी रुपये-पैसे के लिए कोई प्रार्थना या कोशिश नहीं की। यहां तक कि अपनी पत्नी के लिए भी उन्होंने हर चीज चाही लेकिन रुपया-पैसा नहीं।

यह प्रसन्नता की बात है कि इससे पहले कि स्मृति जवाब दे जाती, वी. रामस्वामी अय्यर ने भारती की जीवनी लिख दी। बावजूद इसके कि तारीखों के बारे में वे बहुत सही नहीं हैं, इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने जो कुछ भी लिखा है उसे पढ़ने से भारती के व्यक्तित्व का सीधा परिचय प्राप्त होता है। अभी तक भारती के पांच ही चित्र उपलब्ध हो सके हैं लेकिन उनके भीतर के बुद्धिजीवी और आध्यात्मिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन उनके लेखन से ही किया जा सकता है। अपने लेखन में वे एक निर्भीक, उत्फुल्ल और शक्तिशाली कवि के रूप में दिखाई देते हैं। जगह जगह उनमें इंग्लैंड के रूमानी कवियों की प्रतिध्वनि है। परीदेशवासी शेली की, भोगवादी कीट्स की, ओजस्वी बायरन और चिंतनशील वर्ड्सवर्थ की। जहा तक भारती के हाड़-मांस के शरीर का संबंध है उनका वह व्यक्तित्व भी विविध पत्तों वाले पौधे की तरह हुआ था। बालक के रूप में वे सुंदर थे, और मोटे ताजे न होते हुए भी स्वस्थ थे। एट्टयापुरम के राजा ने उनके शारीरिक विकास से अधिक बौद्धिक विकास के कारण उन्हें अपना स्नेह दिया और उन्हें सुख सुविधाओं का स्वाद करा दिया था। वे एक लंबे और सुदर्शन युवक थे। उनकी साहसिकता के कई प्रमाण मिलते हैं। कहा जाता है कि वे दो दो सीढ़ियां एक साथ चढ़ते-उतरते थे। प्रारंभिक जीवन के उनके जो पांच चित्र उपलब्ध हैं उन सभी में उन्होंने दाढ़ी रखी है। हालांकि जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने उस दाढ़ी को साफ कर दिया था। अफीम खाने की आदत तथा अभाग्य की तीखी मार के कारण उनके चेहरे पर कृशता आ गई थी। आंखें देखने पर लगता था कि वे एक तीखी चमक के साथ किसी भी चीज में गहराई तक प्रवेश कर सकती हैं। अपने जीवन में वे निरंतर शरीर को स्वस्थ और आकर्षक रूप देने के लिए तड़पते रहे। इस दृष्टि से वे प्राचीन ग्रीक थे। अपनी निजी धारणाओं और इच्छाओं आदि को भी

उन्होंने सामूहिक प्रार्थना का रूप दे दिया था। उन्होंने पराशक्ति को भी इसी रूप में पूजा, ताकि राष्ट्र स्वस्थ् और बलशाली लोगों का एक प्रतिरूप हो सके। अपनी कविता 'मरता भारत : उठता भारत' में वे चीखते हैं :

तू, जिसके कंधे कमजोर हैं, दूर हो जा।
तू, जिसका हृदय संकुचित है, दूर हो जा।
तू, जिसका चेहरा भावहीन है, दूर हो जा।
तू, जिसकी आंखों में चमक नहीं है, दूर हो जा।

भविष्य के भारत का स्वागत करते हुए वे बड़ी खूबसूरती के साथ अत्यंत आशापूर्ण स्वर में कहते हैं :

आ तू आ, तेरी आंखें चमकदार हैं।
आ तू आ, तेरा हृदय बलशाली है।
आ तू आ, तेरी बातों में मधु है।
आ तू आ, ओ चौड़े कंधे वाले अतिमानव
आ तू आ, तेरा मन स्वच्छ स्फटिक-सा है।
आ तू आ, क्षुद्रता के विनाश के लिए
आ तू आ, दीनों पर दया करने के लिए
आ तू आ, हल जैसी चाल वाले, आ।

कम से कम 1915 तक तो उनका व्यक्तित्व खुद भी इस नए भारतीय से मिलता जुलता नजर आता है। अधिकांशतः दक्षिण भारतीयों की तुलना में वे गोरे थे। उनकी लंबाई पांच फीट नौ इंच थी। शरीर भी पर्याप्त सुगठित था। यदि कोई दोष था तो यह कि उनके बाएं पांव में कोई गांठ थी जिसकी वजह से वे अक्सर दर्द का अनुभव किया करते थे। अगर वह पैर किसी कड़ी चीज से टकरा जाता था तो कुछ मिनटों के लिए वे दर्द से तिलमिला जाते थे। उन्हें सिपाहियों की तरह तन कर चलना पसंद था। प्रायः टहलते वक्त वे गाते रहते थे। कभी कभी तो वे अपने कदम भी स्वर के आरोह और अवरोह के साथ ही रखते थे। वी. रामस्वामी ने लिखा है कि उन्हें माथे पर कुमकुम लगाने का तथा कोट में बटन होल लगवाने का और ढंग से कटी-छंटी मूंछें रखने का शौक था। उनके वस्त्र सादे होते थे, और कभी कभी वह सादगी भद्देपन की सीमा तक पहुंच जाती थी। लेकिन उनकी पोशाक की सबसे महत्वपूर्ण चीज थी उनकी पगड़ी। पगड़ी बांधने की आदत उन्होंने बनारस में पाली थी जो एट्टयापुरम के राजा की नौकरी में आने के बाद स्थाई हो गई। शायद इसका कारण यह था कि वे इसे मन से महत्वपूर्ण मानते थे। उनका आदर्श यह था कि सारे भारतवासियों को निर्भीक, वीर और योद्धाओं के रूप में बदल दिया जाए। इस तरह की कल्पना की प्रेरणा उन्हें पंजाब के सिखों को देखकर मिली थी। सिखों के प्रति अत्यंत प्रशंसा का भाव रखने का एक उदाहरण है उनकी वह लंबी कविता जो गुरु गोविंदसिंह पर लिखी गई है और जिसमें उन्होंने खालसा के जन्म का वर्णन किया है। पांडिचेरी के भारती का

यही व्यक्तित्व था। भारती का 1917 का पांडिचेरी का चित्र देखने पर लगता है कि उनमें एक अजीब ढंग की विरक्ति है। उनके चेहरे पर दूसरी दुनिया के भाव दिखाई देते हैं, हालांकि वे अपने परिवार के बीच थे। इसका एक कारण तो यह है कि उन्होंने दाढ़ी रख ली थी और दूसरा यह कि 1915 में उन्होंने फिर अफीम खाना शुरू कर दिया था। कराइकुडी के 1920 के चित्र में भारती एक कमजोर और परेशान व्यक्ति दिखाई देते हैं। वे पांडिचेरी से चले आए थे लेकिन जीवन में व्यवस्थित नहीं हो सके थे। उनका सबसे मशहूर और लोकप्रिय चित्र वह है जो मद्रास में उनकी मृत्यु से ठीक पहले लिया गया था। उस चित्र में उनकी आंखों की पुरानी चमक लौट आई है और देखने पर लगता है कि वह दुनिया की चुनौती को स्वीकार करने के लिए एक बार फिर तैयार हो रहे हैं। इसके अलावा उनकी मूंछें ठीक तौर पर कटी हुई हैं और आंखों में किसी भी चीज को बेध देने वाली गहराई है। चित्रण बहुत स्वाभाविक है। लगता है कि वे अपनी कुर्सी से उठ रहे हैं। इसी चित्र में भारती उस बेचैन व्यक्ति की तरह हैं जिसकी भूख काम करने की है और प्यास हृदय और आत्मा के लिए नए साहसपूर्ण खोजों की। जिन लोगों ने उन्हे देखा था उनका कहना है कि भारती के पांडिचेरी पहुंचने के पहले के और वहां से लौटने के बाद के व्यक्तित्व में बहुत फर्क आ गया था। राजा जी, जिन्होंने भारती का मद्रास लौटने पर स्वागत किया था, लिखते हैं :

"भारती गाडी से नीचे उतरे। उन्हें देखकर मुझे दुख हुआ। इसके पहले जब मैं उनसे मिला था उनका चेहरा पूर्णिमा के चांद की तरह खिला हुआ था। अब उसकी स्निग्धता खत्म हो गई थी और उस पर एक रूखापन आ गया था। इस दुखद बदलाव के बारे में भीतर भीतर विषाद के साथ विचार करता रहा।"

भारती के शरीर में इस तरह के परिवर्तन आ गए थे लेकिन एक चीज अब भी पहले जैसी चमकदार थी। वह थी उनकी आंखें। सी. आर. श्रीनिवासन उनकी चर्चा करते हुए लिखते हैं : "क्रोध में भरी हुई आंखें, पीड़ा में कांपती हुई आंखें, शांति बिखेरती हुई आंखें, ऐसी आंखें जो आपको मंत्रमुग्ध कर लें। आह, उन आंखों ने मेरे दिल को विमुग्ध कर लिया था।"

भारती अक्सर चिंताओं और परेशानियों के शिकार हुए लेकिन अट्टहास करने का जो वरदान उन्हें प्रकृति से मिला था उसे उन्होंने कभी नहीं खोया। लेकिन वह अट्टहास ऐसा नही था जो किसी को चोट पहुंचाए। उनके स्वभाव में जो सहज विनोद था वह 'कुइल पट्टु' के कुछ गीतों से अपनी परिपूर्णता में चित्रित हुआ है। जीवन के सामर्थ्यवान पक्षों की ओर देखते रहने के उनके गुण ने उन्हें मनुष्यता के प्रति घृणा या उदासीनता से बचा लिया। उनके प्रतिद्वंद्वी भी उनके विनोद के आगे तब पराजित हो जाते थे जब वे देखते थे कि गरीबी उनके चेहरे की तरफ घूर रही है और उस स्थिति में भी वे घंटियों की घनघनाहट की तरह मधुर मधुर मुस्करा रहे हैं। इससे उनके अनासक्त स्वभाव का भी पता चलता है। वे सचमुच गीता के ज्ञानी की तरह थे। अपने और पराए के बोध से वे ऊपर उठ चुके

थे। वे इतने उदार थे कि उसकी वजह से हमेशा आर्थिक संकट में रहे। उन्होंने सर्वदा मुसीबत में पड़े लोगों की मदद की। और वही पहले भारतीय थे जिन्होंने गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका के आंदोलन के लिए चंदा एकत्रित किया। लगता है कि भारती ने गांधी जी में भारत के भावी मुक्तकर्ता का रूप पहचान लिया था। इस तरह की पहचान उनके समकालीनों में बहुत बाद में पैदा हुई। 1908 में उनके पत्र में एक ऐसा कार्टून छपा था जिसमें गांधी जी को एक गाय के रूप में चीते के सामने रख दिया गया था। भारती ने सत्याग्रह की दूरगामी विशिष्टताओं का अनुमान भी सहज ही कर लिया था। उन्होंने एक लेख में गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका के काम की चर्चा करते हुए गहरी सहानुभूति व्यक्त की थी। बच्चों के प्रति उनकी ममता प्रसिद्ध है। उनका एक मौलिक विचार यह भी था कि भावी पीढ़ियों की देखभाल धार्मिक ढंग से की जानी चाहिए। उन्होंने अपनी बहुत-सी कविताएं बच्चों को संबोधित करके लिखी हैं और उनमें प्यार और निर्भीकता के संदेश को बार बार दुहराया है। उन्होंने एक प्राचीन तमिल क्लासिक के आधार पर छोटे बच्चों के लिए एक आचार-संहिता भी तैयार की थी। 'पप्पा पाट्ट' शीर्षक एक बालगीत में उनके आदर्श विचारों की झलक मिलती है :

मेरे प्रिय, कहीं कोई जाति नहीं है।
ऊंच-नीच की बात करना पाप है।
न्याय, विचारों की स्पष्टता, ज्ञान और प्यार
जिनके पास है, वही सबसे ऊंचे है।

बच्चे उनकी ओर बहुत आकर्षित होते थे क्योंकि एक तो वे बहुत अच्छा गाते थे और दूसरे उन्हें बहुत सुंदर सुंदर कहानियां सुनाते थे। जिस समय भारती पांडिचेरी में थे मन्दायम श्रीनिवासाचारी की लड़की यादुगिरि अम्माल अभी बच्ची ही थी। अपने संस्मरण में उसने एक दस साल की लड़की की आंखों से देखी भारती की तस्वीर चित्रित की है। वे खुद भी मातृहीन थे इसीलिए जब कभी किसी मातृहीन बच्चे को देखते थे तो बहुत दुखी होते थे। भारती के परिवार में बहुत-सी कमियां थीं लेकिन एक चीज में वे संपन्न थे। उनके पास प्यार था जिसे वे खुले हाथों उन्हें देते थे। चूंकि उनकी बड़ी लड़की ज्यादातर बनारस में अपनी चाची के साथ रही इसीलिए छोटी लड़की शकुन्तला को उनका सारा प्यार मिलता रहा। उसने लिखा है :

"उन्होंने अपना सारा स्नेह और प्यार मुझ पर बिखेरा और बहुत यत्न से मेरी देखभाल की। निर्वासन के दौरान वे निष्क्रियता, निराशा और मजबूरी के शिकार हो गए थे। शायद मैं ही एक ऐसी चीज थी जिसे पाकर वे अपनी कठिनाइयों से अलग शांति का अनुभव करते थे।" वे उसे अक्सर ही सूर्योदय दिखाने के लिए बीच पर ले जाते। उसके मन में उन्होंने प्रकृति के प्रति प्रेम जगा दिया था। वे उसे अपनी नयी कविताएं सुनाते और विस्तार से उनकी व्याख्या करते। उन्होंने उसे धार्मिक और ऐतिहासिक महान व्यक्तियों के बारे में भी सब कुछ बताया था। अपनी बेटी के स्वस्थ मानसिक विकास के लिए उन्होंने जो

कुछ किया था वह सब कुछ उन्होंने उन बच्चों के लिए भी किया जो उनसे मिले। इस प्रकार जब वे पांडिचेरी में थे उन्होंने एक ऐसे बच्चे को अपने संरक्षण में ले लिया जिसका दिमाग वर्षों से अक्षम था। उस बच्चे को वे सदैव अपनी बगल में रखते, उसके भोजन की व्यक्तिगत निगरानी रखते और जब वह सो जाता तो उसे अपने ही बिस्तर के पास लिटा देते। जो कुछ भी वे कर रहे थे उसके अनुकूल परिणाम के बारे में सचमुच उनके मित्रों तक को संदेह था। बालक एकदम अच्छा हो गया। उनके मित्र घोर आश्चर्य में पड़ गए और उसके मां-बाप की खुशी का तो ठिकाना न रहा। उसने सामान्य जीवन बिताना शुरू कर दिया। भारती में व्यक्तिगत तौर पर अपनी सफलताओं के लिए दंभ नहीं था। उन्होंने अंतर्मुखी की तरह अपनी दैवी पराशक्ति की पूजा करते हुए समय गुजार दिया।

उनके व्यक्तित्व का एक और दिलचस्प पहलू था हमारी राष्ट्रीय विरासत के प्रति उनकी श्रद्धा। हालांकि एक क्रांतिकारी के रूप में वे उन परंपराओं से संघर्ष कर रहे थे जो स्त्रियों की अज्ञानता और अलगाव का कारण थीं और जिन्होंने पुरुषों को सामाजिक भेदभाव की सीमाओं में जकड कर एक दूसरे से अलग कर दिया था। लेकिन इसके बावजूद उनकी कोशिश रही कि अगर बुराई के बीच कोई अच्छाई है तो उसे छान कर निकाल लिया जाए। अच्छाइयों पर उन्होंने अधिकार किया। उन्हें इस बात पर अभिमान था कि वे भारतीय थे और हिंदू थे लेकिन वह अभिमान उनकी सहनशीलता पर हावी नहीं हो सका। अपने घनिष्ठ मित्र सुरेन्द्रनाथ आर्य के ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने पर उन्हें बहुत दुख हुआ। ईसा मसीह पर उन्होंने खुद भी कई अच्छी कविताएं लिखी थीं लेकिन उसके बावजूद उन्होंने यह नहीं माना कि आर्य का कदम सही था। क्योंकि उनका विश्वास था कि कोई धर्म, किसी धर्म से अच्छा नहीं होता है। बहुत दुख के साथ उन्होंने आर्य से कहा था :

"इस में कोई संदेह नहीं कि हिंदू रीति-रिवाजों और परंपराओं में अनेक बुराइयां और मूर्खताएं हैं। हमें उनमें सुधार लाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस तरह का पलायन मेरी समझ में नहीं आता। सत्य सभी धर्मों में है।"

भारती के संबंध किसी से कितने भी बिगड़े हुए क्यों न हों, वे कभी उसके प्रति कठोर नहीं होते थे। न ही ठोस प्रमाणों के अभाव में किसी को जानबूझ कर की गई दुष्टता के लिए दोषी ठहराते थे। जिस समय उनका नौकर लड़का महीने भर के लिए गायब हो गया था उनके आत्मकथात्मक उपन्यास की पांडुलिपि भी गुम हो गई थी। उनके जो मित्र लड़के पर संदेह कर रहे थे उनसे उन्होंने कहा, "यदि काम करने वाले एक दूसरे के प्रति संदेह करने लगें तो कोई भी घर या दफ्तर कायदे से नहीं चल सकता।" वापस लौटने पर मुरगेसन ने पुलिस द्वारा अपने भगाए जाने और तकलीफ दिए जाने की एक लंबी कहानी सुनाई। बिना इस बात की चिंता किए हुए कि उनके क्रुद्ध मित्र लड़के की वापसी से हतप्रभ होकर चुप हैं, भारती ने न केवल लड़के को इस तरह सांत्वना दी जैसे कुछ हुआ ही न हो, बल्कि उसे फिर नौकरी में भी रख लिया।

भारती ने अपने अंतिम उपन्यास को दुबारा लिखने की कोशिश की लेकिन उसमें

सफल नहीं हो सके। किसी भी रचनात्मक लेखन के लिए पुनर्लेखन आसान नहीं होता। खास तौर पर यह बात उन कवियों पर जोरदार ढंग से लागू होती है जिनका महत्वपूर्ण लेखन आवेग की उस स्थिति का परिणाम होता है जिसमें वे आसपास की दुनिया को भूल चुके होते हैं।

भारती को लोगों का साथ प्रिय था, लेकिन जब भी उन पर दैनिक उन्माद छा जाता वे किसी कुंज का एकांत भी ढूंढ़ने लगते। रचना करते हुए कवि की तुलना नी. रामस्वामी उस स्त्री से करते हैं जो प्रसव की पीड़ा सह रही होती है :

"वह एकटक वृक्षों की तरफ देखेगा। झील में झांकेगा। अपने सिर को कुछ पीछे की ओर झुका कर आकाश में निगाहें गड़ा देगा। वह जोर से चिल्लाएगा, सा-सा-सा। दाहिना पांव क्षण भर को पकड़ने की कोशिश करेगा और यदि लय हाथ में नहीं आई तो बायां पांव जमीन पर ठोकर मारने लगेगा। एक मिनट की चुप्पी। फिर एक शब्द, जैसे सीप से सफेद मोती। या तो वह चिल्ला पड़ेगा या तायुमानव स्वामी की किसी कविता का पाठ करने लगेगा। काव्य रचना की प्रक्रिया शुरू से आखिर तक प्रसव पीड़ा की प्रक्रिया थी।"

भारती ने जीवन में जो कुछ भोगा उसे ही कविताओं में उतारा। कविता उनके लिए एक ऐसी देवी थी जिसका वे दर्शन करते थे। वे उसे प्यार करते थे, उसके साथ भावनाओं में बहते थे और उसके दास हो जाते थे। कविता उनके लिए पहले प्यार की तरह थी, जिसके पास वे लौट कर बार बार आते थे और हर बार पहले से अधिक समर्पण के साथ। उनके अनुसार कवि को सामान्य से ऊपर के वातावरण में रहने की आवश्यकता है। अगर वह अपने को भूल गया और एक क्षण के लिए भी दुनियादारी के धरातल पर लौट आया तो उसका वह लौटना घातक होगा। अगर वह एक बार जमीन पर लौट आता है, तो जमीन का प्यार उसे जकड़ लेता है और तब, धीरे धीरे उसकी तीव्र संवेदनाएं खत्म होने लगती हैं। भारती ने इस प्रक्रिया का वर्णन 'काव्य-प्रिया' शीर्षक कविता में किया है। उस कविता में भारती उस स्थिति का रोना रोते हैं जिसमें विवश होकर उन्हें एक स्थानीय प्रमुख के दरबार में नौकरी करनी पड़ी थी। इस नौकरी ने उनकी संवेदना को इतना कुचल डाला था कि वे अपनी काव्यप्रिया के सौंदर्य और देवत्व दोनों के प्रति एकदम सुन्न हो गए थे। उन्होंने अपनी तुलना उस ऋषि से की है जो एक अभिशाप का शिकार था। अभिशाप यह था कि उसे सूअर का जीवन मिलेगा। स्वाभाविक ही था कि ऋषि सूअर का जीवन नहीं चाहता था। उसने अपने पुत्र से आग्रह किया था कि जिस क्षण उसका शरीर सूअर में रूपांतरित हो वह उसे मार डाले। खैर, जिस समय वह सचमुच सूअर बन गया उसका लड़का उसके पास गया और उसने उसे मार डालना चाहा। सूअर ने हाथ उठा कर कहा :

यह जीवन उतना बुरा नहीं है
जितना मैं तब सोचा करता था।
यहां हवा है, पानी है, मीठे कंदमूल हैं
खुशियां हैं जाने कैसी कैसी
आना कुछ महीनों के बाद मगर,

और तब मुझे मार डालना।

पुत्र बहुत निराश हुआ और लौट गया। लेकिन उसके मन में यह जानने की उत्सुकता बनी हुई थी कि उसका बाप किस तरह का जीवन गुजार रहा है। वह जब दुबारा वहां पहुंचा तो उसने देखा कि उसका पिता एक मादा सूअर के साथ आनंद मना रहा है। उसके आसपास बहुत सारे छौने थे। वह हतप्रभ हो गया और उसने निंदा के स्वर में अपने पिता से कहा कि उन्होंने अपना स्वाभिमान खत्म कर दिया है जो वे सूअरों की जिंदगी बिताने में सुख का अनुभव कर रहे हैं। वह अपने पिता रूपी सूअर को मारने के लिए तैयार हुआ। लेकिन उसके सूअर पिता ने उसे आगे बढने से रोक दिया और कहा

जा भाग जा यहां से, मूर्ख
मुझे इस जिंदगी से पूरा प्यार है।
अगर तुझे मेरी जिंदगी अच्छी नहीं लगती
तो कौन रोकता है तुझे आत्महत्या करने से।

इतना कहते हुए सूअर दूर भाग गया। भारती अपने भाग्य की तुलना उस ऋषि से करते हैं और उस पर यह सोचकर दुखी होते हैं कि उन्होंने भी एक राजा के यहां नौकरी करके अपनी काव्यप्रिया को भुला दिया है। एट्टयापुरम की नौकरी से उन्होंने अपने को एक अतुलनीय साहस के साथ अलग किया था। उन्हें चाहे जितने भी दुख क्यों न उठाने पड़े हों वे मुक्त रह सके और उस रूप में अपनी काव्यप्रिया की सेवा करते रहे।

ब्रिटिश भारत में वापसी

यह स्थिति कितनी कारुणिक है कि भारती जैसे अद्भुत व्यक्ति को, जो जीवंतता और प्यार से भरे हुऐ थे, पांडिचेरी में शांतिपूर्वक नहीं रहने दिया— निर्वासन के समय की निष्क्रियता से वे इतने पीड़ित हुए कि सारी अशांति और खतरे मोल लेते हुए भारत लौटने के लिए उत्सुक हो गए। पुलिस के पास उन्हें गिरफ्तार करने का वारंट अभी भी था। पास के ही समुद्र के किनारे नागई में तिरूचि के मशहूर जमींदार के. वी. रामस्वामी अय्यंगार ने अवकाश के दिनों के लिए एक बंगला बनवा रखा था। इस बात की परीक्षा करने के लिए कि ब्रिटिश भारत में लौटने पर जो खतरे सामने आएंगे उनका मुकाबला किया जा सकता है या नहीं; भारती चुपके से उस जगह पर गए। एक उदार मित्र के रूप में अय्यंगार ने आर्थिक संकट के दौरान उन निर्वासितों की मदद की थी। वे उन दिनों नागई में आराम कर रहे थे। दिन के ग्यारह बजे थे। अय्यंगार अपने मित्रों के साथ गप्पशप्प कर रहे थे। तभी एक तांगा सामने आया। एक व्यक्ति उसमें से उतरा और मकान में चला गया। उस व्यक्ति ने दाढ़ी मूंछ साफ करा रखी थी और उसकी खोपड़ी गंजी थी। अय्यंगार ने भारती को बहुत निकट से जाना था लेकिन उस रूप में वे उन्हें तत्काल पहचान नहीं सके। कुई क्षणों के बाद उन्हें झटके से ख्याल आया कि आगंतुक व्यक्ति भारती हैं। वे झट से उठे और कवि को लेकर ऊपरी मंजिल पर चले गए ताकि पास बैठे हुए मित्र उन्हें पहचान न सकें। अय्यंगार को कवि भारती के साहस पर सुखद आश्चर्य हुआ। उन्हें नागई के मित्रों से 'सुन्दरम अय्यर' के रूप में परिचित कराया गया। उस स्थान पर वे एक सप्ताह तक रहे। पूरा सप्ताह उल्लास और हंसी में बीता और भारती ने वहां राजनीति के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहा। वे वहां पर निरंतर गीत गाते रहते और इसकी वजह से उन सभी के प्रिय हो गए जो वहां पर छुट्टियां बिताने आए हुए थे। नागई का यह प्रकरण बाद में समाचारपत्रों में व्यापक ढंग से विज्ञापित किया गया था। निश्चय ही जब पुलिस को अपनी अक्षमता और भारती के साहस का पता चला होगा तो वह गुस्से में आ गई होगी। यह

घटना 1918 की है। कहा जाता है कि अपनी 'परूक्कुल्ले नल्ल नाडु' शीर्षक कविता उन्होंने इसी अवसर पर लिखी थी। उस कविता की धुन उन्हें उस हिंदुस्तानी भिखारिणी के गाने से मिली थी जिसे उन्होंने गाडी में सुना था। कविता में भारतवर्ष की भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की संक्षेप में अद्भुत चर्चा है। वह भारती की देशभक्ति की कविताओं के विकास की भी गवाह है। पांडिचेरी काल की दार्शनिक, नैतिक और रूमानी कविताएं लिखने के बाद उन्होंने अपनी दिशा बदल दी थी और उसी के साथ साथ अपने मूल स्वभाव के अनुसार दृष्टव्य बिंबों के माध्यम से भारत के भूगोल और उसकी परंपराओं का चित्रांकन शुरू कर दिया था। उनके हृदय में भारत की पवित्र भूमि पर, चाहे जिस तरह भी हो, लौट आने की इच्छा हुई। पाडिचेरी में उनके पास बहुत-सी पांडुलिपियां एकत्र हो गई थीं और उसी के अनुपात में कर्ज भी बढ़ गए थे। ऐसी स्थिति में परिवार का निर्वाह करना भी असंभव हो गया था। प्रथम विश्व युद्ध अभी समाप्त ही हुआ था। उनका ख्याल था कि मुमकिन है कि उस युद्ध के कारण भारतीय देशभक्तों को एक नया और उन्मुक्त जीवन मिल सके। ऐसा सोचने की एक वजह यह भी थी कि भारतीयों ने मित्र राष्ट्रों द्वारा लड़े जा रहे युद्ध में बलिदान किया था और उम्मीद करते थे कि उस बलिदान के बदले में ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर उन्हें स्वच्छंद जीवन बिताने का अवसर मिलेगा। भारती के लिए किसी भी निर्णय का अर्थ था सक्रियता। प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होने के दस दिन के भीतर ही भीतर वे पांडिचेरी छोड कर अपनी पत्नी के जन्मस्थान कद्दयम चले गए। साथ में पत्नी और उसका भाई भी था। लेकिन कड्डलूर पहुंचते पहुंचते उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और सहायक मजिस्ट्रेट ने उन्हें वहीं हिरासत में रखने का आदेश दे दिया। कड्डलूर के सतगोपाचारी और नटराज अय्यर नामक वकीलों ने उन्हें जमानत पर छुड़ा लेने की असफल कोशिश की। उनकी पत्नी और साला दोनों ही पांडिचेरी लौट आए जहां पर उन्होंने सारा हिसाब किताब साफ करके सामान वगैरह बांध लिया। घर का साज सामान और बच्चों को लेकर वे फिर कद्दयम चले गए।

चौबीस नवंबर को भारती जिला कलक्टर स्टोडार्ट के सामने हाजिर हुए। उनकी जमानत का प्रार्थनापत्र तो अस्वीकृत हो गया लेकिन स्टोडार्ट ने यह वायदा जरूर किया कि उनके बारे में मद्रास सरकार को तत्काल अपनी रिपोर्ट भेज देंगे। उन्होंने यह आग्रह भी स्वीकार कर लिया कि भारती को कड्डलूर के नागरिक कारागार में रखा जाए क्योंकि हाल की बीमारी के कारण वे कमजोर हो गए थे। स्वदेशमित्रन् के श्री ए. रंगस्वामी अय्यंगार ने उनके मामले में व्यक्तिगत रुचि ली और उसमें हस्तक्षेप किया। उन्होंने सारा मामला मद्रास की पुलिस के महानिरीक्षक के सामने रखा। महानिरीक्षक ने इस बात का आश्वासन मांगा कि भारती भविष्य में अपने को किसी भी तरह से राजनीति से संबद्ध नहीं करेंगे। भारती से इस प्रकार का कोई आग्रह करना बहुत कठिन था। बहरहाल, अय्यंगार ने समझौते का एक ऐसा तरीका निकाला जिसे दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया और भारती तत्काल छोड़ दिए गए। अय्यंगार ने भारती को अपने समाचारपत्र में आने के लिए भी आमंत्रित किया।

लेकिन उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि अभी कुछ दिनों के लिए कद्दयम में रहकर स्वास्थ्य लाभ करना चाहते हैं। दिसंबर के मध्य तक वे अपनी पत्नी के गांव चले आए। कद्दयम पहुंचने के तत्काल बाद उन्होंने अय्यंगार को जो पत्र लिखा था उससे यह भी स्पष्ट होता है कि श्रीमती एनी बेसेन्ट डा. सुब्रह्मण्यम अय्यर और सी. पी. रामस्वामी अय्यर ने उन्हें जेल से मुक्त कराने में मदद की थी। कद्दयम एक नदी के किनारे स्थित खूबसूरत-सा गांव है। उसके एक सिरे पर पहाड़ियां हैं और गांव प्राकृतिक सौंदर्य से संपन्न है। इस जगह ने भारती को मोह लिया और उन्होंने अपना लिखना फिर शुरू कर दिया। लेकिन यहां पर भी उनकी किस्मत में ज्यादा दिनों तक शांतिपूर्वक ठहर पाना नहीं बदा था। विचारों से वे कट्टरपंथी नहीं थे। सिस्टर निवेदिता से उन्होंने जो वादे किए थे उनकी भी याद उन्हें बराबर बनी रही। जातिप्रथा की मर्यादाओं को अस्वीकार करते हुए उन्होंने हर वर्ग के लोगों के साथ खाना खाया। उनका मकान एक ब्राह्मण परिवार के मकान से सटा हुआ था, लेकिन इसके बावजूद उनके यहां बिना किसी भेदभाव के अछूतों के अतिरिक्त मुसलमानों और ईसाइयों का आना लगा रहता था। यह विश्वास दिलाने के लिए कि वे स्त्री को पुरुष के ही समान मानते हैं जब कभी वे कद्दयम की सड़कों पर टहलने के लिए निकलते, अपनी पत्नी का हाथ पकड़े हुए चलते। गांव का ब्राह्मण वर्ग उनके इस ढंग से बहुत ही नाराज हुआ और शोर मचाने लगा कि उन्हें गांव से निकाल दिया जाए। खिन्न होकर वे एक दूसरे मकान में चले गए जो गांव के छोर पर था। इस तरह ग्रामवासी भी कुछ संतुष्ट हो गए और उसी के साथ उन्हें अपने लिए अपेक्षित शांति पा लेने का भी विश्वास हो गया। वे कभी कभी मद्रास जायाँ करते थे। तमिलनाडु की कुछ अन्य जगहों पर भी भाषण देने के लिए गए। एक बार जब वे मद्रास गए थे, उनकी भेंट महात्मा गांधी से हुई। यह भेंट उनके जीवन की पहली और अंतिम भेंट थी। यही वे स्थितियां थीं जो बाद की घटनाओं को आकार देने में सहायक हुई।

भारतीयां ने सोचा था कि उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजों को जो मदद दी थी उसका पुरस्कार रोटी के रूप में युद्ध की समाप्ति पर उन्हें मिलेगा। युद्ध समाप्त होने पर रोटी तो उन्हें मिली नहीं अलबत्ता पुरस्कार में शरारत से भरे हुए रौलट एक्ट के पत्थर मिले। इसकी वजह से सारे देश में एक उत्तेजना फैली और नागरिक अवज्ञा का आंदोलन शुरू हो गया। देश के विभिन्न भागों के नेताओं का मन जानने के लिए महात्मा गांधी ने हर तरफ का दौरा शुरू किया। मद्रास में वे मार्च, 1919 में आए और राजाजी भवन में ठहरे। भारती के मन में गांधी जी के प्रति बहुत आदर का भाव था। यह भाव उनमें तभी पैदा हो गया था जब गांधी जी दक्षिण अफ्रीका के आंदोलन के सिलसिले में धीरे धीरे मशहूर हो रहे थे। उनसे मिलने की इच्छा से भारती राजाजी भवन गए। उस समय गांधी जी अपने सचिव महादेव देसाई से भीतर कुछ महत्वपूर्ण बातचीत कर रहे थे। कमरे में सी. राजगोपालाचार्य, एस. सत्यमूर्ति और ए. रंगस्वामी अय्यंगार भी उपस्थित थे। वी. रामस्वामी को दरवाजे पर इस बात की चोकीदारी के लिए नियुक्त कर दिया गया था ताकि वे किसी

बाहरी आदमी को भीतर न जाने दें और उन लोगों की बातचीत में कोई बाधा न पड़े। भारती रामस्वामी को पांडिचेरी से ही अच्छी तरह जानते थे। उन्हें देखते ही भारती ने 'हेलो' कहा और सीधे भीतर चले गए। रामस्वामी भौंचक्के हो गए और इसके पहले कि वे रोकें भारती अंदर जा चुके थे। इस बीच भारती गांधी जी के पास पहुंच गए थे और उन्हें नमस्कार करने के बाद बगल में बैठ गए थे। बिना इस बात की प्रतीक्षा किए कि उनमें से कोई उन्हें गांधी जी से परिचित कराएगा, भारती ने कहा, "गांधी जी, आज शाम साढ़े पांच बजे ट्रिप्लिकेन-बीच की एक जनसभा में मुझे भाषण देना है। क्या आप उसकी अध्यक्षता करेंगे ?" गांधी जी ने यह महसूस कर लिया था कि बात करने वाला कोई न कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति है। एक तथ्य यह भी है कि मद्रास के किसी भी नेता ने भारती का विरोध नहीं किया था। निश्चय ही गांधी जी इससे भी प्रभावित हुए होंगे। वे देसाई की ओर मुड़े और पूछा, "महादेव भाई, आज के हमारे कार्यक्रम क्या हैं ?" महादेव भाई ने बताया कि साढ़े पांच बजे शाम को उन्हें कहीं और जाना है। गांधी जी ने भारती की ओर मुड़ते हुए कहा, "इसका मतलब यह है कि आज आपकी सभा में पहुंचना संभव नहीं होगा। क्या आप उसे कल के लिए स्थगित नहीं कर सकते हैं ?" गांधी के उत्तर से भारती के चेहरे पर किसी तरह की निराशा का भाव नहीं उभरा और उन्होंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, "चिंता की कोई बात नहीं है, मैं जा रहा हूं। गांधी जी, अपने आंदोलन के लिए आप मेरी शुभकामनाएं लीजिए।" इतना कहकर उन्होंने झुक कर गांधी जी को प्रणाम किया और कमरे के बाहर निकल आए। गांधी जी मित्रों की ओर मुड़े और उस व्यक्ति के बारे में पूछा। राजाजी ने सादा-सा उत्तर दिया, "हमारे तमिलनाडु के कवि हैं।" कहा जाता है कि गांधी जी ने उस उत्तर पर टिप्पणी की थी कि उनकी उचित ढंग से देखभाल की जानी चाहिए। "क्या तमिलनाडु में ऐसा कोई नहीं है जो उनकी देखभाल कर सके ?" गांधी जी के उन शब्दों के विभिन्न अर्थ लगाए गए हैं। लेकिन उनमें से सच्चाई के सबसे निकट यह लगता है कि गांधी जी ने पहली ही दृष्टि में भांप लिया था कि ऊपरी तौर पर अशिष्ट और भद्दे दिखाई देने वाले उस व्यक्ति की निगाहों में असामान्य चमक थी, देशभक्ति का ज्वार और आत्मविश्वास था। मुमकिन है कि गांधी जी ने यह भी महसूस किया हो कि भारती जैसी सच्ची प्रतिभा वाले व्यक्ति को महज इसलिए उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए कि वह दृष्टि और व्यवहार में अजीब-सा लगता है। तब ? क्या गांधी जी ने उनकी महानता को एक क्षण में पहचान लिया था ? जहां तक गांधी जी की महानता की प्रशंसा का संबंध है, हमारे पास उसके पर्याप्त प्रमाण हैं। उनकी प्रशंसा भारती ने न केवल अपने राजनीतिक लेखों में बल्कि कविताओं में भी की है। एक समय के भयंकर उग्रपंथी भारती, गांधी जी के भारतीयों को दिए गए अहिंसा के संदेश से पराजित हो गए थे। जो भारती यौवन के प्रारंभिक दिनों में हिंसक क्रांति के लिए उत्साहित थे वही अब अहिंसा के सिद्धांतों के सामने नतमस्तक हो गए। बाद के दिनों में सत्याग्रह के प्रति भारती के मन में कोई आस्था नहीं रह गई थी, लेकिन जिन दिनों अहिंसा के सिद्धांत से वे आकर्षित थे उन्होंने महात्मा गांधी के प्रति

एक कविता लिखी थी और उसमें उनकी बहुत प्रशंसा की थी :

स्वतंत्रता की उस धार्मिक राह के वास्तविक मूल्य
का अनुभव करके
(जिसे महान उपदेशको और त्यागियों ने दिखाया था)
तुमने युद्ध और हत्या के तरीके को खत्म किया
सत्याग्रह के नए रास्ते के अनुकूल परिणामों का आभास
तुम्हें हुआ था
हम भूल जाएं जब तक के सारे अत्याचार
और धरती पर सूर्योदय हो न्याय के जीवन का।

उनके राजनीतिक विचारों मे इस प्रकार के जो तात्विक परिवर्तन आए थे उनका प्रभाव हमें दूसरी चीजों में भी देखने को मिलता है। वे हर क्षेत्र में प्रौढ़ हो चुके थे। राजाजी का कहना है कि बाद के वर्षों में वे ज्ञानी जैसे दिखने लगे थे। एट्टयापुरम के राजा से उन्होंने आर्थिक सहायता का आग्रह किया था, और उसका कोई अनुकूल परिणाम नहीं निकला था। लेकिन उसके बावजूद उन्होंने राजा के अस्वीकार को कोई महत्व नहीं दिया। भारती जानते थे कि राजा की खामोशी का कारण यह है कि वे अंग्रेजों की नाराजगी से भयभीत हैं। मगर इसके बावजूद उन्होंने आर्थिक सहायता की जो मांग उनसे की थी वह कवि के रूप में नहीं की थी। न ही उस मांग में भीख या दान पाने की कोई ध्वनि थी :

"तमिलनाडु पर अभिशाप का लटकता हुआ काला पर्दा
मैंने हटा दिया।
क्योंकि ऐसा कोई कवि नहीं था
जो तमिल की वाणी को
चारों दिशाओं में गुंजा सके।"

"काव्य के राजा" ने जमीन के राजा से सिर्फ यह कहा था कि वे अपने साथी के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करें, बस। एट्टयापुरम के भयभीत राजा ने भारती के राजत्व को नहीं पहचाना तो दूसरे लोगों ने निश्चय ही उन्हें पहचाना। ऐसे लोगों में पढ़े-लिखे लोग भी थे और निरक्षर भी, गरीब भी थे और धनी भी। उनमें उद्योग और व्यापार की दुनिया के भी बहुत सारे लोग थे। भारती तमिल के प्रेमियों के संतोष के लिए अक्सर कदुदयम से बाहर जाया करते थे और अपने भाषण द्वारा लोगों को द्रवित करते थे। अक्तूबर, 1919 में उन्होंने वी. एस. षण्मुखन् तथा उनके कई तमिल मित्रों के आग्रह पर कन्नाडु कथन में दस दिन बिताए थे। वे सभी भारती की कविता के सौंदर्य पर मंत्रमुग्ध हो गए थे और सबने इस बात का आग्रह किया था कि वे कन्नाडु कथन में अपना घर बनाएं। उसके लिए वे सारी सुविधाएं देंगे। लेकिन वह योजना कार्यरूप नहीं ले सकी। उसके बाद हिंदू मताभिमान संघ के आग्रह पर भारती कराईकुडी गए। आने वाले महीनों में वे एक-आध बार इन जगहों पर गए और वहां पर व्यापारी वर्ग के कुछ स्नेही व्यक्तियों के बीच

कुछ दिन रहे। करांईकुडी में दो अवसरों पर उनकी तस्वीर खींची गई थी।

कद्दयम में अपनी रचनाओं के प्रकाशन की योजना बनाते हुए वे कुल मिलाकर दो वर्ष रहे। पांडिचेरी में उन्होंने बहुत तेजी के साथ कविताएं लिखी थीं। उन्होंने भारतवर्ष के बहुत-से लोगों से आर्थिक सहायता के लिए बातचीत की थी ताकि उन पांडुलिपियों का प्रकाशन कर सकें जिनसे चालीस किताबें बनती थीं।

बातचीत का कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला क्योंकि कहीं से कोई जवाब ही नहीं आया। पांडिचेरी से वे बड़ी बड़ी आशाएं लेकर अपने देश में लौटे थे लेकिन जब उन्होंने देखा कि उनके तमिल बंधु उनके प्रति बहुत उदासीन हैं तो उनकी निराशा का ठिकाना न रहा। शरीर से वे क्षीण और दुर्बल अवश्य हो गए थे लेकिन उनकी आशावादिता और संकल्प अडिग थे। भाषण देने, रचनाएं लिखने और 'अमृतम्' नाम की पत्रिका के प्रकाशन की योजना बनाते हुए उन्होंने अपने को पूरी तरह काम में व्यस्त रक्खा। श्री आर. ए. पदमनाभन ने लिखा है कि अंतिम वर्षो में भारती अमरत्व के विचार पर निरंतर चिंतन कर रहे थे। पत्रिका का 'अमृतम्' नामकरण भी 1920 के उनके चिंतन की स्थिति को प्रमाणित करता है। 1919 के उत्तरार्द्ध में "मृत्यु को" शीर्षक से उनकी एक कविता प्रकाशित हुई थी। उसमें एक योगी की निर्भीकता का विशद वर्णन है। उस कविता में वे अत्यंत उपेक्षा और अनिच्छा के साथ मृत्यु की कल्पना फटे कपड़े के टुकड़े से करते हैं। जिस तरह कपड़े के टुकड़े को मसलकर फेंक दिया जाए उसी तरह मृत्यु भी उनके लिए है। उन्हें यह शंका कभी नहीं हुई कि उनका नाम अमर लोगों की सूची में होगा कि नहीं। लेकिन उनकी सबसे बड़ी कुंठा यह थी कि उनके समकालीनों ने कभी उनके अमरत्व को स्वीकार नहीं किया। यह बात बहुत ही दुख की है कि भारती के साथ कभी भी कोई बोस्वेल नहीं रहा, जो उनकी बातचीत को कागज पर उतारता जाता हालांकि भारती भी जॉनसन की तरह अद्भुत वार्ताकार थे। शब्द उनके मुंह से लहराते हुए निकलते थे और उनमें प्रखरता, विनोद और व्यंग्य सबका समावेश होता था। आर्य-द्रविड विवाद पर उन्होंने आकस्मिक ढंग से एक अवसर पर जो बातें कहीं थीं उनकी चर्चा करते हुए उनके एक समकालीन ने कहा कि भारती एक निधि थे जिन्हें हम लोगों ने खो दिया। "मेरे मित्रो ! आर्यो के पहले द्रविड़ थे, द्रविडों के पहले आर्य-द्रविड। उसके पहले पशु और जीवजंतु थे। हमने उन्हीं की जगह ली है। हमने मकान बनाए हैं और फसलें उगाने के लिए खेत बनाए हैं। कल्पना कीजिए कि आदिकाल के वे लोग अचानक हमारे सामने आ जाते हैं और हमसे मांग करते हैं कि हम उनकी जगह लौटा दें तो हमें बोरिया बिस्तर बांध कर यहां से चला जाना पड़ेगा।"

कद्दयम प्रवास के दौरान एक बार वे त्रिवेंद्रम गए थे। वहां की एक घटना का वर्णन मिलता है। त्रिवेंद्रम में वे अपने परिवार के साथ एक विवाह समारोह में शामिल होने गए। वहां पर उन्हें चिड़ियाघर जाने का अवसर मिला जिसे देखकर विश्वबंधुत्व की उनकी भावना फूट पड़ी और उसे उन्होंने तत्काल "नगाड़ा बजाओ" शीर्षक अपनी कविता में इस प्रकार

अभिव्यक्त किया :

हमीं से संबद्ध हैं कौए और गौरैया
सागर और पहाड़
यह हमारा हम है
जिसे हम देखते हैं हर ओर
और हृदय थिरक उठता है उल्लास में।

भारती ने अपने व्यक्तित्व को काव्य की भव्य उपलब्धियों तक ही सीमाबद्ध नहीं रखा। क्या एक बार गधे के प्रति स्नेह दिखाने के कारण उन्हें गांव के सारे लोगों की नाराजगी का शिकार नहीं होना पड़ा था ? चिडियाघर में भी अपने मन को संतोष देने के लिए ही उन्होंने जानवर को थपथपाया था और अंत में शेर की गुफा के पास पहुंचे थे। गुफा के रक्षक चौकीदार ने कहा था कि क्योंकि शेर को पूरी तरह काबू में नही लाया जा सका है अतः वे उसे छूने की गलती न करें। भारती निहायत बेफिक्री के साथ शेर के नजदीक चले गए और काफी ऊंची मगर स्पष्ट आवाज में बोले, "शेरों के राजा ! तुम्हारे सामने कवियों का राजा भारती खड़ा है। क्या तुम मुझे अपनी कला, शक्ति और वीरत्व नहीं दोगे ? ये मर्त्य लोग तुमसे डर रहे हैं। अपनी तेज गर्जन द्वारा तुम इन्हे दिखा दो कि तुम्हारा सहधर्मी उन मनुष्यों की तरह नहीं है जिनमें आदि से अंत तक बुराइयां ही बुराइयां हैं।"

उसके तत्काल बाद ही शेर दस मिनट तक निरंतर दहाड़ता रहा। भारती काफी देर तक उसे थपथपाते रहे। यह घटना भारती की निर्भीकता और प्यार का शानदार उदाहरण है।

‘तूने मेरी चिंताओं को नष्ट कर दिया’

वह समय रचनात्मक लेखन के अनुकूल नहीं था। 1920 में मद्रास लौटने पर उन्होंने ‘स्वदेशमित्रन्’ में पुनः सहायक संपादक के रूप में काम करना शुरू कर दिया। वे पत्रकारिता के क्षेत्र में वापस आ गए जिसमें बहुत कुछ अनिच्छापूर्वक पैसे के लिए भी लिखना पड़ा था। रामस्वामी अय्यगार ने प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत किया। एक बार फिर वे पूरी तरह नौकरी में आ गए थे।उनकी प्रतिभा नए सिरे से चमकने लगी। भारती ने जानबूझ कर राजनीतिक विषयों में दिलचस्पी लेना छोड़ दिया, और धीरे धीरे वेदांत की ओर झुकने लगे। वस्तुएं अधिक संभावनापूर्ण और चमकदार दिखाई देने लगी थीं। नियमित वेतन मिलने के कारण वे आए दिन की चिंताओं से मुक्त हो गए थे। हालांकि उनका वेतन अधिक नहीं था, और उनके सामने भी वही सारी परेशानियां थीं जो मद्रास के शहरी क्षेत्र में रहने वाले निम्न मध्यवर्ग के लोगों के सामने थीं, लेकिन उनकी वजह से न तो उन्हें दूसरों से ईर्ष्या हुई, न ही उन्होंने कभी शिकायत की। उस समय ‘स्वदेशमित्रन्’ के संपादक उनसे दस गुना अधिक वेतन पा रहे थे। भारती इस स्थिति का भी आनंद लेते और अक्सर अपने मित्रों के बीच अत्यंत प्रसन्नता के साथ कहते, “ओह, कम से कम अब तो वह समय आ गया जब किसी तमिल पत्रकार को एक हजार रुपये मासिक वेतन मिलने लगा है।”

लेकिन सुख और संतोष का यह दौर अधिक समय तक नहीं टिक सका। उन्हें पता नही था कि उनके चारों ओर दुर्भाग्य के बादल घिर रहे हैं। 1921 में कारुंगल पालयम में वे 'मनुष्य अमर है' विषय पर व्याख्यान देने गए। ‘स्वदेशमित्रन्’ में प्रकाशित होने वाला उनका एक अंतिम लेख था ‘रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यूरोप-भ्रमण’। उस लेख में भारती की विदेश-भ्रमण की अतृप्त इच्छा का भी सूक्ष्म आभास मिलता है।

ट्रिप्लिकेन में उनके निवास के पास ही पार्थसारथी का मंदिर था। सदा की तरह एक शाम वे मंदिर के हाथी के लिए कुछ फल व नारियल लेकर वहां गए। उस समय उनकी मनस्थिति ऐसी थी जिसमें वे हर वस्तु में ‘उस एक’ का ही दर्शन करने लगे थे। हाथी

को वे चीजे देते हुए उन्होंने कहा, "मित्र ! मैंने तुम्हारे लिए नारियल और फल खरीदा है।" हाथी उस क्षण दुर्भाग्यवश उन्माद में था। उसने एक झटके में भारती को सूंड से उठाकर फेंक दिया और वे मूर्च्छित होकर उसके पैरों के पास गिर पड़े। हाथी से भयभीत होने के कारण किसी को भी यह साहस नहीं हो सका कि उन्हें उठा ले। पर भारती के मित्र कुवलाई कन्नन को जब इसकी सूचना मिली तो वे दौडे हुए आए। अपनी जान का खतरा मोल लेकर हाथी के पास गए और भारती को उठाकर वापस ले आए। कन्नन उन्हें फौरन रायापेटा अस्पताल ले गए। हालांकि भारती सामान्यता बहुत दुर्बल थे लेकिन कुछ समय के लिए वे न केवल ठीक हो गए बल्कि 'स्वेदशमित्रन्' के कार्यालय में अपनी जगह पर वापस भी आ गए। दरअसल, पिछली दुर्घटना पर भी वे एक दार्शनिक अनासक्ति के साथ सोच रहे थे, "हाथी नहीं जानता था कि मैं कौन हूं, अतः उसने धक्का दे दिया।"

उसी समय वे पेचिश के शिकार हो गए। शरीर तो दुर्बल था ही, हाल की दुर्घटना में वे बच भी गए थे, लेकिन उसकी वजह से वे पहले से भी ज्यादा कमजोर पड़ गए थे। क्या भारती को दूसरा कोई अहसास था ? क्या उस अहसास की ही वजह से उन्होंने दवा लेना अस्वीकार कर दिया था ? मूर्च्छा में पड़े पडे भारती अक्सर बडबड़ाया करते। पराली नेलय्यप्पार आदि मित्र उनकी ओर चिंतित दृष्टि से देखते रहते। 12 सितंबर, 1921 को भारती का देहावसान हो गया। मृत्यु के समय उनके चेहरे पर शांति थी और देखने से लगता था कि उन्हें कोई दर्द या तकलीफ नहीं हुई थी।

अंतिम संस्कार उनके मित्र एस. दुराइस्वामी के सहयोग से सपन्न हुआ। पच्चीस व्यक्तियों की उपस्थिति में बहुत सादे ढंग से दाह क्रिया की गई। एक दो भाषण भी हुए थे। वक्ताओं में मुख्य थे सुरेन्द्रनाथ आर्य। मृत्यु-सूचना के बाद दूसरे दिन जगह जगह शोकसभाएं हुई और उनमें दिवंगत को श्रद्धांजलियां अर्पित की गई। कुछ समय के लिए उनका परिवार घोर संकट का शिकार रहा लेकिन कुछ वक्त बीतने के बाद उनकी पुस्तकों से नियमित आमदनी होती रही। आने वाले कुछ वर्षों में 'भारती प्रचारालयम्' की स्थापना हुई और मुख्य व्यवस्थापक के रूप में उनके छोटे भाई विश्वनाथ अय्यर ने उनके गद्य और पद्य दोनों को अनेक भागों में प्रकाशित किया। इस बीच उनकी देशभक्ति की कविताएं पूरे तमिलनाडु में व्यापक रूप से प्रसिद्धि पा चुकी थीं और उनसे स्वतंत्रता आंदोलन को प्रेरणा मिलने लगी थी। सन् 1940-50 के बीच मद्रास सरकार को भारती की रचनाओं के प्रकाशन का अधिकार प्राप्त हो गया। उसने मुफ्त उपहार के रूप में जनता में उनका वितरण कराया। इस काम से कुछ प्रकाशक भी उत्साहित हुए। उनकी पुस्तकें कागजी जिल्द और सस्ते संस्करण के रूप में सामने आई। समय के बीतने के साथ साथ उनकी महानता ही सिद्ध हुई और मूल्यांकन से यह भी स्पष्ट हो गया कि उनकी कविताएं कलात्मक प्रौढ़ता से संपन्न हैं। उनके स्वप्न साकार हुए। उनकी कविताएं न केवल घर घर में लोकप्रिय हैं वरन कक्षाओं में उनका गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया जाता है। उन पर समालोचनात्मक ढंग से भी गंभीरता और चिंतन के साथ विचार किया जाता है। भारती के लिए शायद

इन सब चीजों का कोई अर्थ न होता। भारती को शांति तो मिली लेकिन तब जब वे पांडिचेरी और कद्दयम की चक्कियों से अपने को गुजार चुके थे। जिस समय वह स्थितिप्रज्ञ मृत्यु की गोद में आराम करने गये, उस समय तक उनकी सारी इच्छाएं समाप्त हो चुकी थीं और मन को शांति मिल चुकी थी। देहावसान के एक दो साल पहले से ही उन्होंने मृत्यु पर चिंतन करना शुरू कर दिया था। उन्होंने विश्वबंधुत्व के पाठ का अपने ही ऊपर अभ्यास किया था और वे मृत्यु के भय और रहस्य दोनों से मुक्त हो चुके थे। अतः मृत्यु भारती के पास आई तो अवश्य लेकिन उसमें भारती को पराजित करने का दंभ नहीं रहा। कारण यह था कि भारती उसके पहले ही पराशक्ति का वरदान पा चुके थे

ओ काली ! तुम आनंदरूपा हो
तुमने मुझमें प्रवेश किया है।
तब, तुम्हारे बगैर, ओ काली
मैं कैसे रह सकता हूं एक क्षण भी ?
ओ काली ! तुमने दिया है मुझे प्यार
और आदमीयत।

रचनाएं

परिचय

द्रविड़ समुदाय की भाषाओं में तमिल सबसे पुरानी भाषा है। ईसा के प्रादुर्भाव के हजार वर्ष से अधिक पहले ही वह सामान्य रूप से प्रचलन में आ गई थी। आज इस भाषा के आदिकालीन साहित्य का जीवित अंश उन अनेक संकलनों में उपलब्ध है जिनमें शौर्य और प्रेम के गीत हैं। बाद के समय की रचना या तो व्याकरण संबंधी है या प्रवचनात्मक। वह मुख्य रूप में जैनियों द्वारा लिखी गई। सातवीं शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक भक्ति का आंदोलन चलता रहा। इस काल में शैव और वैष्णव भक्तों द्वारा हजारों सुंदर गीत लिखे गए। वे आज भी उपलब्ध हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद तमिल की उपेक्षा शुरू हो गई। पांडित्य ने भाषा को जकड लिया। उस काल में प्रकाश की कुछ किरणों के यदा-कदा छिटकने के बावजूद, कुल मिलाकर सामान्य दृष्टिकोण बहुत ही निराशाजनक रहा। उन्नीसवीं शताब्दी में लोकप्रिय संत कवि ज्योति रामलिंग स्वामी ने 'समरस' और 'सन्मार्ग' के गीत गाए और उसके लिए काम किया। उन्होंने यह प्रयत्न भी किया कि बीच की शताब्दियों में भाषा में जो अस्वाभाविक विकृति आ गई थी उसे दूर किया जाए ताकि प्राचीन के गर्भ से नए जीवन का एक निर्मल झरना फूटे और बहकर उस जनसमुदाय तक पहुंच सके जिसे पिछड़ा और उपेक्षित कहा जाता है। अंग्रेजी के प्रचार के साथ साथ पश्चिमी जनतंत्र के उदार विचारों का आगमन हुआ। अंग्रेजी के माध्यम से पश्चिमी देशों की साहित्यिक विधाओं का—सही अर्थों में यूरोप की साहित्यिक परंपराओं का—परिचय मिला। तमिल के लेखक एक ऐसे सीधे, सहज और स्वाभाविक माध्यम की खोज में थे जिसके जरिए वे जनसामान्य तक पहुंच सकें। अतः उसके बाद निरंतर इस बात का प्रयास होता रहा कि तमिल को उसके आडंबरपूर्ण और गरिष्ठ पाश से मुक्त करके ऐसा धरातल दिया जाए जहां से आदान-प्रदान के माध्यम से उसके साहित्य को संपन्न बनाया जा सके और उसमें ताजे विदेशी विचारों का समावेश हो सके। भाषा के पुनरोत्थान की प्रक्रिया अपने पूरे वेग में थी। यू. वी. स्वामीनाथ अय्यर ने, जो कि शोध के प्रति न्योछावर थे, जनसामान्य में

तमिल साहित्य के प्रति आम दिलचस्पी पैदा कर दी थी। आधुनिक तमिल के पुनरोत्थान की इसी प्रक्रिया के बीच भारती का प्रादुर्भाव हुआ। वे कवि, निबंधकार, राजनीतिक पत्रकार, अनुवादक, कथा लेखक और उपन्यासकार, संक्षेप में एक बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार और कलम के जादूगर थे। साहित्य की जिस किसी विधा को उन्होंने अपनाया उसका कायाकल्प हो गया। उसमें एक नयी चमक आ गई। सफलता उनकी अनुगामिनी थी। उनसे प्रेरणा पाकर लेखकों की नयी पीढ़ी अवतरित हुई और उसने आधुनिक तमिल साहित्य के लिए नए क्षितिजों की खोज की। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि स्वयं भारती लेखन के रास्ते पर वड्र्सवर्थ या हार्डी जैसे पेशेवर साहित्यिकों की तरह तीव्रगति से नहीं चल सके। कारण यह था कि उन्हें जीवन भर अपने स्वास्थ्य और दरिद्रता से जूझना पड़ा। उसी दरिद्रता पर काबू पाने के लिए उन्हें पत्रकार के रूप में अथक परिश्रम मांगने वाली नौकरी स्वीकार करनी पड़ी। लेकिन क्योंकि उनमें देशभक्ति की ज्वाला धधक रही थी, यह अनिवार्य ही था कि उन्हें भारतमाता की सेवा में प्रवृत्त किया जाता। मां की सेवा का पुरस्कार यह रहा कि वे सरकार के भयंकर कोपभाजन हुए। वास्तव में स्वतंत्रता संग्राम के साथ उनके नाम को इस तरह जोड़ दिया गया था कि न केवल अपने जीवनकाल में बल्कि मृत्यु के बाद तक उन्हें मूलरूप में देशभक्त कवि के ही रूप में जाना जाता रहा, हालांकि उन्होंने संख्यात्मक दृष्टि से जितना अधिक लिखा उसमें देशभक्ति की कविताओं का अंश स्वल्प है।

देशभक्ति की कविताएं

इस काल की रचनाओं के दौरान उन पर सर्वाधिक प्रभाव शेली का रहा। शेली ने वैयक्तिक स्वतंत्रता की अथक तलाश की थी इसीलिए वे भारती को बहुत प्रिय थे। बनारस से एट्टयापुरम लौटने पर वे राजा के सरक्षण में आए थे। राजा को अश्लील और कामोत्तेजक साहित्य में रुचि थी लेकिन परिस्थितियों की विवशता और अपनी खिन्नता के दौरान भारती को जिस बौद्धिक प्रेरणा की बहुत अधिक आवश्यकता थी वह उन्हें शेली में मिल गई। मद्रास आने पर उन्होंने देखा कि जनसाधारण में भी बुद्धिजीवियों और गंभीरतापूर्वक सोचने वालों का ऐसा एक वर्ग है जिन्हें वे इच्छित ढंग से जिम्मेदारी के साथ संबोधित कर सकते हैं। वहां पर उन्हें बिगड़े दिल के किसी संरक्षक को प्रसन्न करने के लिए कोई चीज नहीं लिखनी थी। अपेक्षित श्रोताओं का वर्ग वहां तैयार था। देश के दूसरे भागों की तरह तमिलनाडु में भी समाचारपत्रों और पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हो गया था और उनके माध्यम से राजनीतिक और सामाजिक विचार सामने आने लगे थे। गद्य केवल प्रबुद्ध लोगों को ही प्रभावित कर सकता था; जब कि कविता की शक्ति उस बिजली की तरह थी जो छूते ही झनझना देती है। इसी के माध्यम से जनसामान्य के बीच से वीर नायकों की उत्पत्ति हो सकती थी।

श्रोता तो तैयार थे ही। भारती ने अपने उन प्रभावशाली गीतों से (जिनमें उन्होंने भारत के भूगोल, उसकी संपन्न परंपराओं, वर्तमान असंतोष और भव्य भविष्य का चित्रण किया था) निमिष मात्र में उन्हें मंत्रमुग्ध कर लिया। उन गीतों ने तात्कालिक ढंग से इतना प्रभाव डाला कि किसी भी राजनीतिक सभा को भारती के एक या दो गीतों से ही शुरू करना अनिवार्य हो गया था। अक्सर ही भारती उन गीतों को खुद ही गाते और इसके कारण उनमें अद्भुत जीवंतता आ जाती। 1907 में वी कृष्णस्वामी अय्यर ने भारती के देशभक्ति के तीन गीतों की 15 हजार प्रतियां मुद्रित कराकर बंटवाई। उस तरह की कविताओं की अभूतपूर्व मांग हुई। उसके बाद उनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए और तत्काल ही बिक

गए। स्वदेश गीतांजलि में 14 गीत थे। संग्रह को प्रस्तुत करते हुए कवि ने लिखा :

"मैं इन पुष्पों को उस भारतमाता के चरणों में निवेदित करता हूं जो शक्ति और एकता की प्रतीक है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि इन पुष्पों में सुगंधि नहीं है। लेकिन क्या भगवान शिव ने निम्न जाति के एक व्यक्ति द्वारा फेंके गए पत्थरों को स्वीकार नहीं किया था ? चाहे जो हो, भारतमाता मेरे इन पुष्पों को कृपापूर्वक स्वीकार करें।"

इस तरह की क्षमा-याचना की कोई आवश्यकता नहीं थी। उन गीतों के माध्यम से भारती की जिस प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ था उसे तमिलवासी तत्काल पहचान गए थे। उन्होंने और गीतों की मांग की। भारती ने 1909 में 'जन्मभूमि' का प्रकाशन कराया। प्राक्कथन में उन्होंने लिखा :

"स्वतंत्रता के प्रकाश के प्रति अपने प्यार के कारण मैंने माता के चरणों में कुछ काव्यपुष्प समर्पित किए। यह मेरे लिए सुखद आश्चर्य की बात है कि भक्तों को वे अच्छे लगे। माता ने मेरी पूजा स्वीकार की। इसी वजह से मुझमें जो विश्वास पैदा हुआ है उसी के नाते माता के चरणों में समर्पित करने के लिए कुछ फूल और लाया हूं।"

महत्व की बात यह है कि उन्होंने दोनों संग्रह सिस्टर निवेदिता को समर्पित किए। क्या सिस्टर वह द्रष्टा नहीं थीं जिन्होंने भारती को भारतमाता का मनोदर्शन कराया ? भारती देशभक्ति की कविताएं अंतिम समय तक लिखते रहे। संभव है कि उनमें से कुछ कविताएं खो गई हों और कुछ ऐसी भी हों जो आज तक प्रकाश में नहीं आ सकी हैं। लेकिन इसके बावजूद हमारे सम्मुख भारती की देशभक्ति की कविताओं का एक बडा संग्रह है। उनमें कुछ वर्णनात्मक हैं, कुछ व्यंग्यात्मक, कुछ आदर्शवादी और कुछ ऐसी भी जिनमें पीड़ा और पश्चाताप है। इस प्रकार उनमें पर्याप्त विविधता है। लेकिन हर कविता में भारती का स्पर्श स्पष्ट है—ऐसा स्पर्श जिसमें आए दिन की सामान्य स्तर की बाजारू राजनीति अमर काव्य के चमकदार स्वर्ण में रूपांतरित हो गई है।

केवल राजनीति और प्रचार से उन्हें अरुचि थी। उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ सिर्फ यह नहीं था कि अंग्रेजों को यहां से खदेड दिया जाए। उसके आध्यात्मिक पक्ष भी थे। स्वतंत्रता उनके लिए एक स्वाभाविक प्यास, एक प्रारंभिक प्रेरणा और मनुष्य की आत्मिक आवश्यकता थी। भारती का धर्म देशभक्ति का वह धर्म था जिसका समर्थन तिलक और श्री अरविन्द जैसे देवात्माओं ने किया। वह धर्म सारे संसार के भ्रातृरूप में समेटने की अस्पष्ट धारणा मात्र नहीं था। वह धर्म प्रतिबद्धता की एक स्थिति थी जो मनुष्य में स्वाभिमान और चीजों से संपृक्त होने का बोध पैदा करके उसके व्यक्तित्व को विकसित करती है। भारती की प्रतिबद्धता ऐसी ही थी जिसमें वे किसी वस्तु की आकांक्षा कर सकते थे, उसके लिए तकलीफ उठा सकते थे, उसकी मांग कर सकते थे और एक ऐसे देश के नागरिक की तरह उल्लसित भी हो सकते थे जो अपने मानवीय और नागरिक अधिकारों के प्रति सचेत रहता है। 'वन्देमातरम्' और 'जयभारत' मंत्रों की तरह हैं जिन्हें बेड़ियों में जकड़े एक वीर पुरुष ने अपनी पूरी शक्ति के साथ गाया था।'वन्देमातरम्' घनीभूत आवेग और

काव्यात्मक उत्कृष्टता का उदाहरण है

नमन तुम्हें हम करते माता।
विजयी माता।
नमन तुम्हें...
जय भारत, जय हिंद
जय, जय, जय, जय,
नमन तुम्हें हम करते माता।
आर्यावर्त के पुरुष, स्त्रियां और देवता
झूम झूम कर गाते हैं सहगान
नमन तुम्हें...
मन से पीड़ित
तन से जर्जर
चिल्लाते हैं देशभक्त
अब भी मन की गहराई से
नमन तुम्हें हम करते माता।
विजय हमारी हो, हम
हारें या मर जाएं
खड़े एकजुट हम सस्वर
आवाज उठाते, गाते
नमन तुम्हें हम करते माता।

संयुक्त भारत की कल्पना ठीक उसी तरह की है जिस तरह मां अपने बच्चों का पोषण करती है। यह विचार भारत के लिए नया नहीं है। वैदिक काल में भी यह विचार प्रचलित था। राधाकुमुद मुकर्जी के शब्दों में भारत की मूल एकता महज एक बौद्धिक कल्पना या सूक्ष्म विचार नहीं थी। वह हृदय के भीतर का एक स्पष्ट अनुभव थी। वह एक क्षण की प्रेरणा का बोध भी नहीं थी। बल्कि राष्ट्रीय चिंतन की एक व्यवस्थित प्रवृत्ति थी जिसका जन्म धार्मिक पुस्तकों और दैनंदिन की प्रार्थनाओं से हुआ था। पिछली शताब्दी के अंतिम दिनों में बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'आनन्दमठ' नाम का एक उपन्यास लिखा था। उपन्यास के एक अध्याय में उन्होंने भारतमाता की एक प्रार्थना जोड़ दी थी। उसकी पहली पंक्ति थी 'वन्देमातरम्'। यह प्रार्थना बंगाल विभाजन के विरुद्ध होने वाले आंदोलन के दौरान बहुत लोकप्रिय हुई थी। श्री अरविन्द कहते हैं :

"जनता को वह मत्र दे दिया गया था, और एक ही दिन में सारे के सारे लोग देशभक्ति के धर्म से बंध गए थे। माता ने स्वयं अपना दर्शन दिया था। जिस क्षण जनता को वह दृष्टि मिल जाती है, शांति समाप्त हो जाती है। आराम हराम हो जाता है, और तब तक के लिए नींद गायब हो जाती है जब तक कि मंदिर बनकर तैयार नहीं हो जाता, जब तक

कि बलिदान के सहारे उस प्रतिमा को प्रतिष्ठित नहीं कर दिया जाता।"

सुब्रह्मण्य भारती ने तमिलवासियों के हृदय में इसी मंदिर को प्रतिष्ठित करने का दायित्व लिया था। इस काम को उन्होंने तीन दिशाओं से शुरू किया।

उन्होंने भारत की भौगोलिक और आध्यात्मिक महानता का इस रूप में वर्णन किया कि लोग उसकी तरफ अनचाहे ही खिंच उठें। उनमें स्वतंत्रता के आदर्श की धारणा को इस प्रकार गुंफित कर दिया जाए जिससे हर व्यक्ति निर्भीक हो जाए। भारत के महान पुरुषों के कार्यों को इस रूप में रखा जाए ताकि लोग उन्हें जीवंत आदर्श के रूप में अपने सामने रखकर अपने दायित्व के प्रति सक्रिय हो सकें। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर भारती ने वर्णनात्मक कविताएं भी लिखीं। सुझावात्मक भी (जिनमें 'चाहिए' पर बल था) और ऐसी भी जिनमें शौर्य और वीरता का चित्रण था।

अपनी एक प्रारंभिक कविता में भारती ने भारतीयता के बोध का सफल अहसास करते हुए उन कारणों की ओर इशारा किया है जो भारतमाता के प्रति उनके मन में प्रेम जगाते हैं :

यही है वह धरती जिसने देखा था
माता को, पिता को
उल्लास का जीवन बिताते
यही है वह धरती जहां अनगिन पूर्वजों ने
जीवन को अंत तक जिया और विदा हुए।
जन्मे यहीं पर हजारों विचार
और पनपे और बढ़े इसी धरती पर।
इन सबको करते हुए स्मरण
क्यों न प्रशंसा करूं मैं इस धरती की
और गाता रहूं बार-बार
मां तुम्हें प्रणाम है।
मां तुम्हें प्रणाम है।

देश के अपने अन्य बंधुओं के साथ भारती ने भी भारत की महानता और मां के प्रति श्रद्धा और प्यार की भावना के उत्फुल्ल अनुभावन में हिस्सा बंटाया था। इस लंबे-चौड़े विश्व में निश्चय ही भारत सबसे अच्छा देश है :

तन्मयता योग की हो, चाहे ज्ञान
चाहे संगीत, काव्य, दान, स्वाभिमान,
सभी दृष्टियों से है भारत उत्कृष्ट
सभी राष्ट्रों से उत्कृष्ट
शौर्य में, पराक्रम में
योद्धा की शक्ति में

दया में, सहायता में
चिंतन को अनुभव अभ्यास से
मिलाने में
सब में बेजोड़ देश
भारत है चमक रहा शान से।

कविता क्या है, भारत के बड़प्पन की एक लंबी उल्लासपूर्ण प्रशंसा है। जिन दिनों भारती अपने गीत लिख रहे थे, भारत के लोग दास वृत्ति के प्रभाव में न केवल विदेशी माल के इस्तेमाल के आदी हो चुके थे वरन भारतमाता के प्रति भी यह सोचकर लोगों ने दुर्भाव पाल लिया था कि वह दुर्बल और पिछड़ी हुई है। मगर इसके बावजूद भारती ने बहुत दृढ़तापूर्वक कहा :

यहां पर हो चुके हैं निर्भीक योद्धा
अनेक संतों ने इस धरती को पावन किया
यहीं पर सुना गया उत्कृष्टतम दैवी संगीत
यहां उपलब्ध रही हैं सारी पावन वस्तुएं
इसी धरती से फूटा था ब्रह्मज्ञान का सोता
और यहीं पर दिया था बुद्ध ने धर्म का उपदेश
प्राचीन भव्यता का प्रतीक है भारत
अतुलनीय
आओ, हम करें उसका गुणगान।

अर्धशिक्षित या अशिक्षित लोग उसके बारे में चाहे जितनी भी गलत बातें कहें, उससे उसकी शान या महानता में कोई अंतर नहीं आता। भारत अमर है। 'जयभारत' शीर्षक कविता में भारती का स्वर है :

चिंतन की सृजनात्मक शक्ति से
उसने जीतीं सैकड़ों जगहें
आने दो उन तक को
जो आस्थाहीन हैं
वे भी संपन्न करेंगे उसको।
आने दो तेजी से बढ़ती गरीबी को
जो उसे पराजित कर दे
धर्म से विमुख वह नहीं होगी
मां है वह - जय हो।

भारतमाता अपने भीतरी व्यक्तित्व में नित्य नवीन है, ज्ञान का भंडार है। वह शक्ति और व्यक्तित्व दोनों में असाधारण है। वह पराजय से प्रभावित नहीं होती क्योंकि धर्म उसका सबसे बड़ा मूल्य है। विजातीय शोषणों के बावजूद वह सच्चाई का पल्ला पकड़े रहती है।

हम भले ही उदासीन हो जाएं, वह हमारी संस्कृति को निरंतर संपन्न करती है। हमारे पात्रों को उस स्थिति तक में भरा रखती है जब हम उसे दीन-हीन बना देते हैं। वह तब भी हमें मुक्ति के प्रति आसक्ति सिखाती है, जब हम अपने को दासता की दुर्वृत्तियो में फंसा के रखते हैं। वह हमें स्वतंत्रता से प्यार करने की दिशा देती है। 'भारतमाता' शीर्षक अपनी कविता में भारती एक के बाद एक प्रश्न करते हैं, उन सभी प्रश्नों का उत्तर भारत है और उसी के साथ माता भी :

किसका था वह धनुष भयंकर
जिसने मटियामेट किया लंका को
उत्तर : वह था पराक्रमी माता का;
आर्यों की रानी, भारत मां।

समस्त इतिहास, आख्यान और मिथक, प्रयत्न और उपलब्धि की सारी आशाएं, कवि के सारे स्वप्न, अंतर्द्रष्टाओं की समस्त दृष्टि, सभी माता मे सन्निहित हैं। यह उसी का धनुष था जिसने अपने अचूक निशाने से इंद्रजीत को खंड खड कर दिया। वे उसी के हाथ थे जिन्होंने वेदों की रचना की और जिसने शकुन्तला के वीर पुत्र का पालन पोषण किया। उसके कंधों पर गांडीव था। उसने अपने वादों को पूरा करने के लिए कानो के आभूषणों को तिलांजलि दे दी थी। उसने गीता का पाठ पढ़ाया और भीष्म के मुंह से प्रतिज्ञा कराई। उसी की जबान से बुद्ध की वाणी निकली। राजा जनक ने जो निर्णय किया था उसका कारण वही थी। वह सर्वगुणसंपन्न है लेकिन उसके बावजूद केवल सत्य का पक्ष लेती है। वह सारे अंतर्विरोधों को सहमति में बदलती है, विभिन्नताओं को एकता का रूप देती है।

उसका हृदय एक है
लेकिन चेहरे तीस करोड;
उसका मस्तिष्क एक है
लेकिन बोलती है अठारह भाषाएं।

भारती को पूर्ण विश्वास था कि जब कभी उन्हें आहत किया जाएगा भारतवर्ष के लाखों-करोड़ों लोग एक स्वर में उत्तर देंगे। अपनी विभिन्नताओं में भी संयुक्त भारत के लिए स्वतंत्रता एक स्वर्णपुंज थी। बाधाएं और कठिनाइयां चाहे जितनी भी हों, एकता की रक्षा होनी चाहिए। राजनीति के क्षेत्र में उग्रपंथी वे जरूर थे लेकिन इसके बावजूद उन्होंने सामान्य रूप में प्रचलित उन विचारधाराओं के सामने कभी भी समर्पण नहीं किया जिनका उद्देश्य विनाश था। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति की उस कटु और विनाशकारी राह को पसंद नहीं किया जैसे कि वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय नाम के कवि ने अपनी बहुत-सी कविताओं में विदेशी अन्याचार का मुकाबला करने के लिए तलवार उठाने की आवश्यकता महसूस की थी :

हम वह भाषा नहीं बोलते
जो प्रभावहीन हो।

क्योंकि गलतियों की याद में
हम जलते हैं।
हम उस शत्रु का विनाश करते हैं
जो हमारे गीतों में छिपी तलवार को
नीची नजर से देखता है।

भारती अपने शत्रु तक से प्यार कर सकते थे। घृणा शब्द उनके लिए था ही नहीं। वे ईश्वर से यह प्रार्थना भी करते थे कि उनके शत्रुओं का हृदय परिवर्तन हो जाए। लेकिन वे उनसे घृणा नहीं करते थे। इस दृष्टि से वे गांधी के सिद्धांतों के सच्चे संदेशवाहक थे। यह ईश्वर के प्रति भारती की संपूर्ण आस्था ही थी जिसने उन्हें घृणा के रोग और पाप से मुक्त रक्खा। वे अपने ईश्वर को तरह तरह से प्रसन्न करने की कोशिश करते हैं ताकि ईश्वर उनके देश को स्वतंत्र कर दे। देशभक्ति के अपने गीतों में वे जिस ईश्वर को बार बार संबोधित करते हैं वह कृष्ण है। वही देवपुरुप जो कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में कौरवों और पांडवों की सेना के बीच खड़े हैं। सिर्फ वही भारत को बेड़ियों से मुक्त कर सकते है।

लेकिन भारती के स्वतंत्र भारत का निर्माण रक्तपात से नहीं शांतिपूर्ण तरीकों से ही होना था। वे साधन जनतांत्रिक थे जिनका विकास सचेत इच्छा और काम करने के निश्चय से उद्भूत होने वाला था। उसके लिए लोगों को समझा बुझाकर तैयार करने और एक अनुशासनबद्ध सगठन की जरूरत थी। भारती को अपने देश से बहुत प्यार था। इसीलिए वे कभी उस स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकते थे जिसमें रक्तपात की गुंजाइश हो। 'भारतमाता नवरत्न मलइ' में उनके क्रमबद्ध रूप में लिखे गए नवगीत हैं। उन गीतों में उन्होंने उस शांतिपूर्ण क्रांति की कल्पना की है जो गांधी जी द्वारा शुरू की जाने वाली थी:

अभी तक युद्ध के प्यासे गलत लोग
पाप के चमकते मुकुट पहनकर
निर्लज्जता से कहते रहे कि
'शक्ति ही सही है'
शक्ति के कानून के पालन के लिए
युद्ध के उन स्वामियों ने हत्यारी सेवाएं रखीं।
आज भारत दूसरे देशों को
एक नयी राह दिखा रहा है
कवियों के राजा
विश्वप्रसिद्ध रवीन्द्र
मधुर स्वर में कहते हैं
इस व्यापक विश्व में
धर्म के प्रतीक मोहनदास गांधी

सभी मनुष्यों के नेता हैं।
उनके नेतृत्व में हम भी
यह सिद्ध करने को तैयार हैं
कि हर क्षेत्र की तरह राजनीति में भी
धर्म की ही विजय होगी।
तुरही से जय की धुन बजाओ'।

यह सौभाग्य की बात है कि भारती की उस संयत आवाज को हिंसक राजनीति के विरुद्ध उठाया गया। हिंसा को बढ़ावा देने वाले वर्ग के आग्रह का मद्रास के लोगों पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। जिलाधीश ऐश की हत्या जैसी कुछ छिटपुट घटनाएं जरूर हुईं, लेकिन वहां के लोगों ने बंगाल और महाराष्ट्र की तरह व्यापक पैमाने पर संगठित ढंग से आतंक फैलाकर अपने को संतोष नहीं दिया। कट्टर उग्रपंथी होने के बावजूद भारती ने आतंकवादी कार्यक्रमों को बढ़ावा नहीं दिया। उन्होंने यही ज्यादा अच्छा समझा कि लोगों को भारत के गौरवशाली अतीत के बारे में आश्वस्त किया जाए ताकि वे वर्तमान को एक स्वर्णयुग के रूप में पुनर्निर्मित करने की प्रेरणा पा सकें। लेकिन उस समय की स्थिति बहुत निराशाजनक थी। क्योंकि जनता के अधिसंख्य लोग या तो इसके प्रति उदासीन थे या विदेशी भाषा और विदेशी रहन-सहन के गुलाम हो चुके थे। भारती ने उन्हें उठाने की कोशिश की ताकि वे पुनः अपना स्वाभिमान प्राप्त कर सकें। श्री ए. श्रीनिवास राघवन ने भी कहा है :

"भारत के स्वतंत्रता संग्राम में राजनीति के लोग विदेशी नियम और कानून तथा उसकी शस्त्र शक्ति से लड़ रहे थे तो भारती दूसरे मोर्चे पर थे। उनकी लड़ाई अधिक भयंकर थी; क्योंकि वह आत्मा के शुद्धिकरण की थी। उन्होंने अपने बंधुओं को ऐसी दृष्टि दी जिसके अभाव में लोग बरबाद हो जाते हैं-उन्होंने उनके मन में एक आकांक्षा भी जगाई जिसमें हर दृष्टि सक्रियता का रूप लेती है, क्योंकि इच्छा के बिना दृष्टि एक निष्क्रिय स्वप्न के सिवा और कुछ नहीं होती।" भारती के ही शब्दों में

हृदय अब अधिक सह नहीं सकता
देखो।
इच्छाहीन यह जन-समूह
भयाक्रांत।
आह ! ऐसा कुछ भी नहीं
जिससे ये भयभीत न हों
उन्हें लगता है
उस पेड़ पर, इस ताल में
हिल रही है एक शक्ल भूत की
चीखते, चिल्लाते हैं
भय की अपनी धारणा से
मरते हैं ये लोग।

'अतीत का भारत' शीर्षक कविता में वे ओझा की तरह क्रोध में फुफकारते हुए उन भूतों को नष्ट कर देने का संघर्ष करते हैं जिन्होंने भारत को आत्माहीन, नक्कू और गुलाम राष्ट्र में बदलकर पुंसत्वहीन बना डाला है। उस कविता का सामूहिक प्रभाव चकाचौंध पैदा कर देने वाला है। श्रोता उसे सुनकर आत्मग्लानि और क्षोभ की मनोदशा में बह जाने के लिए विवश हो जाता है। लेकिन इसी के साथ भारती एक भविष्यद्रष्टा की निगाह से उत्थान की राह पर बढ़ते हुए भारत को भी देखते हैं और उसका स्वागत करते हुए 'भावी भारत' शीर्षक कविता में कहते हैं :

आओ, तुम आओ अपनी मुट्ठियों में लेकर विजय
आओ, आओ, ओ शालीन वक्ता
आओ, आओ, तुम पूर्ण युवा हो
आओ, आओ, तुम्हारा चेहरा चमकदार है
आओ, और विचार को कर्म में बदल दो
आओ, तुम्हारी हलकी-सी चाह एक दृढ़ इच्छा है
आओ, इस धरती को एकता में बांधने का
महान कार्य संभाल लो
आओ।

अपनी कल्पना की निगाहों से भारती इस देश की उस चमकती हुई नयी पीढ़ी को देखते हैं जिसमें स्वतंत्रता से प्यार करने वाले राजपूत, मराठे, बंगाली, आंध्रवासी, तमिल, कन्नड़ीऔर शेष अन्य जातियां भारत के उस झंडे के नीचे एकत्र होती हैं जो हवा में फहरा रहा है।

लेकिन यह अंतर्द्रष्टा एक घोर यथार्थवादी भी था। भारती ने उन स्थितियों का अनुमान लगा लिया था जिनका निर्माण स्वतंत्रता की प्राप्ति और उसे स्थायी बनाने के लिए अनिवार्य था। उन्होंने जाति प्रथा की निंदा करते हुए लिखा :

हम सभी की एक ही जाति है
एक ही वंश है
हम सभी संतान हैं भारत की
चाहे कानून हो, चाहे हो हैसियत
हम सब समान हैं
हम सब हैं भारत के राजा।

स्वाधीन भारत की कल्पना उन्होंने एक ऐसे जनतांत्रिक देश के रूप में की थी जो अपने आप में समर्थ,उत्तरदायी तथा विवेकशील व्यक्तियों से बनता है। इस विषय पर उनकी सर्वोत्कृष्ट कविता है, 'भारत : भविष्य की एक दृष्टि' इसमें आह्वान है कि देशवासियों को घृणा, पराजय और भय का विनाश करके एक नए भारत का निर्माण करना है :

हम घूमेंगे चांदी से दिखते हिमशिखरों पर

जाएंगे हमारे पोत सारे समुद्रों में
लाकर पानी बंगाल की खाड़ी से
सीचेंगे हम दक्षिण भारत की धरती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती महज कल्पनालोक में विचरण करने वाले कवि ही नहीं, बल्कि निर्माण में विश्वास करने वाले देशभक्त थे।

भारती ने भारत के अतीत की भव्यता की बात अपने श्रोताओं से निरंतर कही—कभी उनके कानों में फुसफसाकर और कभी जोर से सुनाकर। देश को उन्होंने उनके सामने अनुभवों की एक समग्र इकाई के रूप में, मानव और देवता के एक संयुक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन इसी के साथ उन्होंने अपने बंधुओं को स्वाधीनता और स्वतंत्रता के अर्थ का अंतर समझने और उसकी गुत्थियों को सुलझाने की चेष्टा की। भारती के लिए 'स्वतंत्र' एक पवित्र और प्रकाशमान शब्द है। उनकी स्वतंत्रता अपने आप में संपूर्ण है। उसके साथ राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जैसे विशेषण नहीं जोड़ना है। वह स्वतंत्रता है सारे बंधनों से मुक्त होने की आंतरिक स्वतंत्रता। जैसे पक्षियों की स्वतंत्रता, लहरों की स्वतंत्रता। उससे बढ़कर कोई चीज नहीं है। व्यक्ति के लिए बड़े से बड़ा बलिदान उसके उपयुक्त है। राजनीतिक स्वतंत्रता तो एक तात्कालिक कदम था। उसका अंतिम आदर्श था 'मनुष्य' को स्वतंत्र करना। देशभक्ति की भावना का प्रयोग जब किसी स्थानिक परिस्थिति पर विजय पाने के लिए भोंडे ढंग से किया जाता है तब वह कभी कभी आत्मघातक अवज्ञा का भी रूप ले लेता है। लेकिन जब उस भाव या आवेग का उपयोग निरंतरता के साथ किसी व्यापक परिस्थिति पर काबू पाने के लिए होता है तब वह स्वतंत्रता की वास्तविक स्थिति के पास पहुंचाता है। स्थानिक देशभक्ति ही विकसित होकर सार्वदेशिक स्वतंत्रता के आदर्श का रूप लेती है। इसीलिए वह माता से स्वतत्रता की प्रार्थना करते हैं :

अंगीठी के पास बैठने के सुख से
वंचित करके
मुझे छोड दिया गया है गहरे अंधकार में
माता, मुझे विवश किया गया लेने को
खुशी के एक क्षण के बदले
उदासी के पहाड़-से दिन
माना, करोड़ों विपत्तियों ने
मुझे क्षत-विक्षत करके नष्ट कर दिया
पर, ओ मेरी माता स्वतंत्रता,
मैं छोड़ूंगा नहीं तुम्हें पूजना।

अगर आपको आत्मा की स्वतंत्रता से वंचित कर दिया गया तब इस बात का क्या अर्थ है कि सारी दुनिया आपकी है ? अक्सर धनी देशों के संपन्न लोगों की स्थिति लाश से बेहतर नहीं होती। किसी राष्ट्र में वास्तविक संपन्नता तभी आ सकती है जब उसके

निवासी 'देवदूत' की तरह उदात्तता का जीवन जिएं :

स्वतंत्रता ने नहीं जलाया जिस राष्ट्र में चिराग
क्या वह सचमुच राष्ट्र होगा ?
क्या वह दे सकेगा आत्मा को शरण ?
क्या वह विकसित कर पाएगा ज्ञान ?
क्या वहां उन्नति कर पाएंगे उद्योग ?
वहां क्या आशा होगी कविता के लिए ?
कलाओं के लिए, धर्मग्रंथों के लिए ?
नहीं पाया जिन्होंने तुम्हारे दूध का स्वाद
ओ माता;
क्या वे सचमुच पापी नहीं हैं ?

भारती बार बार स्वतंत्रता देवी से यह आग्रह करते हैं कि वह इस देश को और यहां के लोगों को वास्तविक स्वाधीनता का उपहार पाने का आशीष दें। वह स्वतंत्रता ऐसी होनी चाहिए जो सारी जीवित वस्तुओं को गले लगा सके। इस तरह भारती का आदर्श, अततः एक ऐसा जनतंत्र है जिसकी व्याप्ति राजनीति के साथ साथ समाज के प्रत्येक वर्ग में हो। 'स्वतंत्रता' शीर्षक कविता में उन्होंने स्त्री और पुरुष तथा जाति और संप्रदाय के कारण अस्तित्व में आए बंधनों पर गहरी चोट की है जिनकी वजह से लोगों के बीच अलगाव पैदा हो गया है और वे एक-दूसरे से अजनबी हो गए हैं :

स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।
अंत्यजों, पिछड़े हुए वर्गों के लिए
स्वतंत्रता, उन सबके लिए।
आओ, हम तन-मन से कोशिश करें
किसी को भी छोड़े नहीं,
किसी को न दुःख दें
चलते हुए सत्य और प्रकाश के मार्ग पर।
नहीं होगा कोई भी छोटा वहां
नहीं होगा कोई अन्याय का शिकार
जिसने भी जन्म लिया भारत में
वही है सवर्ण, वही उच्च है।

इस गीत को एक कर्णप्रिय धुन में बांधा गया। उसके तीनों पदों ने जनता के बीच बराबरी के समाज के आदर्श की भावना पैदा करने में एक निर्णायक भूमिका निभाई। जीवन को जनतांत्रिक आदर्शों के अनुरूप ढालने के लिए भारती ने जन-शिक्षण के क्षेत्र में बहुत काम किया। एक जनतांत्रिक संविधान की फैशन की तरह रचना कर देना सरल है, लेकिन ऐसी स्थितियां पैदा करना जिनमें जनतंत्र सही ढंग से काम कर सके, सभी लोगों

के लिए वास्तविक स्वतंत्रता के मूल्य सुरक्षित रह सकें, बहुत ही कठिन लेकिन अनिवार्य कार्य है। इसके लिए भारती ने 'अभय' का मंत्र दिया, क्योंकि जो निर्भीक है वही सच्चे अर्थों में स्वतंत्र हो सकता है। इस विषय पर भारती ने बहुत-सी कविताएं लिखी हैं :

घृणा को पराजित
और भय की हत्या करके
गुण गाओ भारत के।
जीत की बजाओ तुम दुंदुभी
दुंदुभी बजाओ, बजाओ।
भय के शैतान को पराजित कर
मार कर असत्य-सर्प
हमने अपनाया है वेद-मार्ग
ले जाता है जो ब्रह्मज्ञान तक।
मृत्यु ! फेंकता हूं मैं,
तुम्हें फटे कपड़े-सा, नफरत से
आ जाओ यहां; मसल दूं तुमको
हा...हा...हा...

अभय संबंधी कविताओं में सर्वाधिक लोकप्रिय कविता का अंतिम अंश है :

यदि आकाश ही गिर पड़े तुम्हारे ऊपर
सिहरो मत दर्द से
डर की है बात नहीं कोई भी।

इस निर्भीकता का उदाहरण देने के लिए भारती आगे बढ़े। 'छत्रपति शिवाजी' शीर्षक 187 पंक्तियों की अधूरी कविता, शिवाजी का एक लंबा भाषण है जो अंततः युद्ध की चीख में बदल जाता है। भारती ने संपूर्ण गीता का सारांश कुछ बहुत ही प्रभावशाली पंक्तियों में प्रस्तुत किया है। उनकी एक और लंबी कविता गुरु गोविन्द सिंह पर है जिसमें आनंदपुर के समारोह के अवसर पर खालसा के जन्म का वर्णन किया गया है :

व्यक्ति को बनाता नहीं महज ज्ञान
सच्चा, जीवित मनुष्य वह है जो
अर्पित कर देता है आत्मा को
धर्म के लिए
उन लाखों चेहरों की भीड़ में
ऐसे ही वीरों की खोज में
उसने था किया वह प्रयोग कठिन,
भावी को देने के लिए एक आशा,
काफी हैं ऐसे बस पांच वीर

लौटा तो पांच शिष्य साथ थे
एकत्रित लोगों की भीड़ में
वे ही जीवंत थे
बस वे ही अच्छे थे
गूंज उठा आसमान अचरज के नारों से।

भारती की आकांक्षा थी कि इस तरह की जाति सारे देश में पैदा हो जाए। दादाभाई नौरोजी, बी. ओ. चिदम्बरम पिल्लै, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, श्री अरविन्द और विपिनचन्द्र पाल जैसे स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं में उन्होंने इसके अंकुर देखे थे। तिलक के प्रति भारती का प्यार एक प्रकार की शुद्ध भक्ति था। वे अपने को तिलक का शिष्य मानते थे। देशभक्त नेताओं पर उनके जितने भी गीत हैं उन सब की रचना 1921 से वर्षों पहले ही हो गई थी। जैसा कि सी. राजगोपालाचारी ने लिखा है :

"राष्ट्रीय विचारधारा के स्वरूप को उन्होंने जिन गीतों में गूंथा था, वे गांधी जी के मंच पर आने के पहले के लिखे हैं। भारत के संघर्ष के आजकल के बहुत-से प्रशंसक यह सोच सकते हैं कि उनकी रचना 1921 के बाद हुई। उस समय का भारतवर्ष विवेकानन्द, दादाभाई नौरोजी और तिलक का भारत था। वे ही गीत भारती के काव्य की आधारशिला हैं।"

एक कवि की अंतर्दृष्टि से भारती ने गांधी जी की शक्ति को समय से पहले ही देख लिया। पांच पदों में लिखी गई गांधी संबंधी उनकी कविता में महात्मा की बाद की उपलब्धियों का उल्लेखनीय पूर्वानुमान है। यह कविता भारती की देशभक्ति की कविताओं में मोती की तरह विशिष्ट है :

तुम्हारे पास ऐसी जड़ी बूटियां है
कि गेहुंअन के काटे का.जहर
उतर जाता है
तुम एक ढाल हो किसी भी आक्रमण के विरुद्ध।
किन शब्दों में प्रशसा करें तुम्हारी ?
महान पुरुषों और अकिंचन भक्तों ने
स्वतंत्रता के धार्मिक तरीकों का जो
उपदेश दिया,
उसके वास्तविक मूल्य का बोध करके
तुमने युद्ध और हत्या के रास्ते
को वर्जित किया।

भारती एक संयुक्त भारतीय संघमें विश्वास करते थे। स्वतंत्रता के प्रति उनमें एक नशा था। अखिल भारतीय नेताओं के लिए उनके मन में प्रशंसा थी लेकिन इसके बावजूद

उन्होंने अपने क्षेत्र यानी रचनात्मक लेखन के क्षेत्र को उपेक्षित नहीं किया। भाषाई संकीर्णता और उन्माद की निंदा उन्होंने की लेकिन उसी के साथ अपनी मातृभाषा से उन्हें अगाध प्रेम था। वे अनेक भाषाएं जानते थे लेकिन तमिल के प्रति उनके मन में सर्वाधिक मोह था। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि किस प्रकार किसी भाषा को आधुनिक ज्ञान की सूक्ष्मतम ध्वनियों और अभिव्यक्तियों के लिए समर्थ बनाया जा सकता है :

हम जानते हैं जितनी भी भाषाएं
उनमें कोई भी उतनी मधुर नहीं है
जितनी तमिल
आओ, हम इसे मधु-सा मधुर बनाएं
वह बजे घंटियों की तरह
सारे विश्व में।

भारती ने लोगों को इस बात की भी प्रेरणा दी कि वे तमिल का विकास एक निश्चित योजना के अनुसार करें। इसके लिए विदेशी क्लासिकों का तमिल में अनुवाद करना, तमिल के रचनात्मक लेखन को बढ़ावा देना, और उसके प्राचीन और नवीन दोनों तरह के क्लासिकों का विदेशी भाषाओं में रूपांतर करना शामिल है ताकि वह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पाठकों तक पहुंच सके। तमिल को भारती की सबसे बड़ी देन यह नहीं थी कि उन्होंने सुंदर गीतों में उसकी प्रशंसा की, बल्कि यह कि उन्होंने उस भाषा में विभिन्नप्रकार का लेखन करके उसे नया जीवन दिया। अंग्रेजी में भी वे प्रभावशाली ढंग से लिखते थे लेकिन वे अंतिम सांस तक तमिल के साथ जिंदा रहे।

भक्ति के गीत

स्वतंत्रता आंदोलन के आरंभिक काल के बहुत-से नेताओं की तरह भारती भी गहरी धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। वे विद्वान थे, अपने पांडित्य के कारण विशिष्ट थे। हमारे परंपरागत विश्वासों के भूसे के ढेर में से दानों को अलग कर देने की उनमें क्षमता थी। धर्म के साथ जुड़े हुए अंधविश्वास और ऊपरी आडंबर को स्वीकार करना या सहना उनके लिए संभव नहीं था। वे न तो यज्ञोपवीत पहनते थे न जाति प्रथा के विभाजन को स्वीकार करते थे। लेकिन वे अंतर्मन से धार्मिक थे, क्योंकि भक्ति उनकी नसों में गहराई तक प्रवेश किए हुए थी। वे विश्व की आत्मा और उसके ज्ञान में विश्वास करते थे। उस सत्ता की अभिव्यक्ति के लिए राम, कृष्ण और मुरुग (कार्तिकेय) के रूप में जो सगुण अवतार हुए थे, उनमें भी उनकी आस्था थी। अत्यधिक विपत्ति के दिनों में भी प्रार्थना की तन्मयता में ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पित हो जाते थे। भक्ति के उनके गीत एक आध्यात्मिक कोषागार हैं। इस स्थान पर उनकी रचनाओं को तीन श्रेणियों मे विभक्त करके देखना सहायक होगा—पूजा गीत, शक्ति गीत और प्रार्थना गीत।

भारती के प्रार्थना गीत दक्षिण भारत के संगीतज्ञों में बहुत लोकप्रिय हैं। हिंदुओं के लगभग सभी देवताओं राम, कृष्ण, कार्तिकेय, काली, लक्ष्मी, सरस्वती और गणेश—पर उन्होंने गीत लिखे थे। पांडिचेरी के मानक्कल विनायकार मंदिर से प्रेरित होकर उन्होंने उस देवी को संबोधित करके चालीस गीतों की एक माला बनाई। उन दिनों वे निर्वासित की अवस्था में थे और भय से धुंधलाए आकाश में कहीं भी आशा की कोई किरण नहीं थी। लेकिन उस स्थिति में भी वे उतने ही निर्भीक हैं जितने पहले थे :

नहीं है भय—
मृत्यु नहीं होगी पानी में डूबने से
कोई लज्जा नहीं, किसी से डर नहीं
कोई पाप नहीं, कोई छिपाव नहीं

डरेंगे नहीं किसी चीज से,
आए भूचाल कोई भय नहीं।
सागर खौल कर उफनने लगे
डरने की बात नहीं
किसी भी व्यक्ति से, किसी भी वस्तु से,
भय मत खाओ
समय से, स्थान से।
आकाश यहां है, मानसून भी
सूर्य, वायु और जल
अग्नि, धरती, चांद और तारे
हमारे पास शरीर है, जीवन है, ज्ञान है
खाने के लिए भोजन
प्यार के लिए स्त्रियां
सुनने के लिए गीत
देखने को दुनिया
और उच्चारने के लिए
गणपति का नाम।
दीन हृदय; ये सब हैं अक्षय
इनका स्वागत करो;
जिओ अच्छाई में।

भारती ने इस अडिग विश्वास को तमिल के माध्यम से अद्वितीय सौदर्यमय अभिव्यक्ति दी है। उदाहरण के लिए 'मुरुग' में उनका यह कहना

ज्ञान के मंदिर में
दैविक गरिमा के अंक में पड़े
तुम विश्राम कर रहे हो
अपने प्रकाशमान त्रिशूल के साथ;
आओ इस धरती पर
हमें नया जीवन् देने के लिए।

या 'नन्दलाल' मे उनका यह कथन :'

जब भी अनुभव हाता है मेरी अंगुलियों को
उस आंच का (आवेग का)
मैं थिरक पड़ता हूं प्रसन्नता में,
तुम्हारे स्पर्श से
ओ कृष्ण !

अपनी एक अन्य कविता में भी वे कहते हैं :

हमारी निगाहों की दुनिया से
ऊपर—बहुत ऊपर
तुमने बनाया है एक मंदिर
आत्मिक सुख का—
तुमने सिखाया है हमें,
वहां तक पहुंचने का ढंग
ईश्वरीय प्यार के माध्यम से।

प्रेम और निर्भीकता ही ऐसी दो ओषधिया हैं जिन्हें भारती जीवन के हर रोग और दुख के लिए रामबाण मानते हैं :

प्रेम से अधिक प्रभावशाली
कोई और चीज नहीं
जो प्रेम करते हैं
वे स्वभावतः
आंतरिक उल्लास से
भरे होते हैं।

भारती ने अपनी कविता मे प्रतीक रूप मे धार्मिक मिथकों का भी उपयोग किया है। ईसा को सलीब पर चढ़ा दिया गया था और उस बलिदान के बाद उनका व्यक्तित्व अवतार के रूप में अस्तित्व में आया था। उसे अर्थ देते हुए उन्होंने कहा है :

सत्य के सलीब पर
यदि चढ़ा दिया जाए बोध
सशक्त आत्मा का ईसा मसीह
असीम आकाश-सा उभरता है—
कुमारी मेरी (मेगडेलेन) है शाश्वत माता
और ईसा मसीह हैं अमर धर्म
इस प्रतीक को निकट से देखो,
बहता उसमें से है एक भीतरी अर्थ।

भारती के पूजागीतों के केंद्र मे शक्ति गीतों का समुदाय है। उनके हृदय पर जिस देवी का साम्राज्य है वह है शक्ति-मां शक्ति। आदिशक्ति ही सृष्टि का निर्माण और विनाश करती है। जिस तरह त्यागराज के इष्टदेव राम और मीराबाई के कृष्ण थे उसी तरह भारती की इष्टदेवी शक्ति है। शक्ति की उपासना भारती ने संभवतया बनारस में शुरू की थी जहां उनके जनमन में आसीन होने का विश्वास किया जाता है। बाद में सिस्टर निवेदिता भारती के लिए आत्मा की सच्चाई का संदेश देने वाली हुई। कारण : वे स्वयं भी काली की भक्त थीं—

"अन्य देवियों की तुलना में काली हमारे अधिक निकट हैं। दूसरी भी हैं जिनसे हमें प्यार है, या जिनकी हम प्रशंसा करते हैं। लेकिन काली से हमारा रिश्ता है। हम चाहे इसकी जानकारी रखते हों या नहीं लेकिन हम उनके बच्चे हैं : उनके पांवों के पास खेल रहे हैं। जीवन उनके साथ लुका-छिपी का एक खेल है। उस खेल के दौरान यदि संयोगवश हम उनके चरणों का स्पर्श कर लेते हैं, हमारे भीतर एक दैविक शक्ति प्रवेश कर जाती है। लेकिन कौन है जो उस झनझनाहट को तौल सके। उसका अनुमान लगा सके। कौन है जो हमारे 'माता' शब्द की चीख को वाणी दे सके।"

भारती ने 'वन्देमातरम्' रूपी मंत्र की शक्ति को भी पहचाना था। 'भारतमाता' को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा :

पर माता, तू जानती नहीं है क्या
अपने बच्चे को ?
क्या माता सो सकती है :
जब बच्चा उसे जगा रहा हो ?

वह माता संरक्षिका है, सुखदायिनी है। जब बाहरी शक्तिया बच्चे को भयभीत करती है, वह तत्काल सिंहनी बन कर उसकी रक्षा करने लगती है।

उनके अधिसंख्य रचनात्मक लेखन का केंद्रबिंदु माता शक्ति हैं। 'कत्रपट्टु' और 'पाचाली सप्तम' में वे व्याप्त हैं। अपनी गद्य कविताओं में भारती ने विभिन्न रूपों में उनकी चर्चा की है। अपनी एक कविता के निम्नलिखित पद का प्रारंभ उन्होंने शक्ति के शानदार आह्वान के साथ किया है :

शक्ति की बाढ़ में सूरज है एक बुलबुला
शक्ति की झील में सूरज है एक
खिला हुआ कमल
शक्ति सर्वव्यापी है, असीम है, अनंत है
वह गति देती है अचल को।

भारती की दृष्टि इस बिंदु पर व्यक्तिगत है और संबंध को माता और संतान के संबंध के रूप में देखती है। वे उन्हे लक्ष्मी या सरस्वती, काली या गोमती, बल्लि या कन्नम्मा के रूप में देखते हैं। जिस प्रकार बिल्ली का बच्चा अपनी मां के संरक्षण में अपने को संपूर्णतया सुरक्षित महसूस करता है उसी प्रकार हम उस माता की कृपा पर अपने को छोड़ कर आश्वस्त हो सकते हैं। उसके प्रभाव से हम अपनी जीवन नैया को सुरक्षापूर्वक खेकर पार लगा सकेंगे। वह अपने को विभिन्न रूपों में प्रकट कर सकती है; लेकिन हर रूप के पीछे शक्ति का ही अस्तित्व है :

कुछ कहते हैं कि तुम प्रकृति हो
दूसरे देखते हैं तुम्हें पंचतत्वों में—
कुछ का विश्वास है कि तुम आदिशक्ति हो

और कुछ का कहना है
कि तुम अग्नि हो, बुद्धि हो, ईश्वर हो।
अद्‌भुत हो तुम क्यों मेरी माता ?
हमारे पास महज एक शब्द है, ओम्
जिसे हम निवेदित कर सकते हैं तुम्हें।
हमें सद्‌बुद्धि दो, आशीष दो
ओ माता।

'शक्ति को आत्मसमर्पण' शीर्षक कविता में भारती अपने हाथ, आंखे, कान, जिह्वा, कंधे, पांव, हृदय, मस्तिष्क और विचार– सभी कुछ माता की सेवा में अर्पित कर देते हैं। मनुष्य उस माता की अद्‌भुत मशीन है। उसका सदुपयोग माता को ही करना चाहिए :

वीणा के तारों को झनझना कर
(एक राग बजा कर)
क्या हम फेंक देंगे कूड़े के ढेर पर
शक्ति मां ! सुनो, सुनो मेरा निवेदन
तुमने ही दिया है मुझे जीवन
विवेक का दीपक जला दो
जब तक मेरे विचार कर्म का
लेते नहीं रूप
तब तक यह जीवन धरती का बोझ है
कर्म की वह शक्ति मुझे दो
जिससे देश को कर सकूं समृद्ध।

सचमुच, भारती को वह शक्ति मिली। वे अपने भीतर की जीवंत उपस्थिति का अनुभव करते हैं :

मां ने कहा, मेरी पूजा करो
और सुखी रहो–
चिंता मत करो कर्म के फल की।
उसने सारे दुखों को भगा दिया है दूर
और बांध दिया है मुझे खुशी से
मंगलसूत्र में।

शक्ति की अनुकंपा मनुष्य को प्यार की सीख देती है। यहां तक कि विश्व के किसी भी प्राणी के प्रति उसका जो प्यार है, वह उसी मां की अनुकंपा से उद्‌भूत होता है। जगतीय अस्तित्व के सारे अंतर्विरोध उस माता में आकर खत्म हो जाते हैं। इतना ही नहीं, भक्त स्वयं उसी मां में अंतर्भूत होकर मोक्ष की चरम अवस्था में पहुंच जाता है।

भारती माता की इसी सर्जनात्मक विशिष्टता पर बल देते हैं। वह एक मुक्तिदायिनी

है जो एक मुस्कराहट के साथ प्रत्यावलोकित होती है :

काली। तुम हो उल्लास।
मुझ में कर गई हो प्रवेश।
तब, ओ काली, तुम्हारे बिना
मैं रह सकता हूं कैसे ?

भारती ने शक्ति के विनाशात्मक पक्ष की चर्चा बहुत कम की है। हालांकि उन्होंने अनुभव कर लिया था कि सर्जन और विनाश विश्व की वास्तविकता के दो पहलू हैं। पौधे को जन्म देने के लिए बीज नष्ट हो जाता है। हमारा जीवन नित्य नवीन होने वाला एक आश्चर्य है। भारती ने माता के विनाशकारी रूप के बदले मोक्षदायी रूप की भव्यता का गुणगान करना अधिक ठीक समझा। सामान्य प्रवृत्ति के अपवादस्वरूप, केवल एक कविता में उन्होंने भाव, शब्द और लय सभी का उपयोग शक्ति के विनाशकारी रूप के चित्रण के लिए किया है।'ऊजोककूथु' शीर्षक उनकी रचना काव्यात्मक उत्कृष्टता और जीवंतता तथा भावोन्माद की निर्भीक तीव्रता, सभी दृष्टि से उनके लेखन का एक विशिष्ट स्तंभ है। इस कविता में माता के उस भयंकर नृत्य का वर्णन है जो सृष्टि के विनाश को अभिव्यक्त करता है। माता का दैविक उन्माद शिव के पावन आविर्भाव के साथ समाप्ति पर पहुंचता है और तब विश्व की पुनर्रचना के लिए दोनों संयुक्त होते हैं। विवेकानन्द की 'काली माता' की तरह ही यह कविता भी माता के रौद्र रूप का सबल आह्वान करती है। धीरे धीरे वह कर्म में लीन होती है—गांगाली के साज पर दुरात्माओं का झुंड नाचने लगता है। उसके बाद हम देखते हैं सृष्टि को फटते हुए, सुनते हैं उसके खत्म होने की आवाज, और अनुभव करते हैं टपकते हुए रक्त की महक :

तीनों लोकों में ज्योंही शुरू हुआ
महान संघर्ष
और आने लगीं विनाश की
भयंकर प्रतिध्वनियां—
रक्त से लथपथ दुरात्माएं जब
विनाश की छाती पर गाने लगीं
झूम-झूम कर
तब, डमरू की बोल और धुन से
ताल मिलाती, स्वर्गिक सुख में थिरकती हुई
आई तू मंच पर
रौद्ररूपा काली ! चामुंडी ! गांगाली।
ओ मां ! ओ मां !
तूने मुझे खींच लिया है
दिखाने के लिए अपना नृत्य।

जब दुरात्माएं, भयंकर संघर्ष में
टकरा रहीं थीं एक-दूसरे से अपना सिर,
जब समय निकालने लगा नगाड़े से
टकराहट और टूटन के बोल
जब तुम्हारी दृष्टि से निकलीं चिनगारियां
और पहुंच गई धरती के कोने-कोने में
तब आ गई विश्व के महानाश की
अभिशप्त घड़ी
जब समय और तीनों लोक
बदल गए बरबादी के ढेर में
जब खत्म हो गया विनाशकारी उन्माद
और उठने लगा एक अकेला ज्योतिपुंज—
तब भयंकर तृषा को मिटाने के लिए
अवतरित हुए पावन शिव।
तू तभी मुस्करा पड़ती है,
और शुरू कर देती है मेरे साथ
जीवन का सुखद नृत्य।

अपने पांडिचेरी निर्वासन के दौरान भारती एक वेदांती के रूप में परिपक्व हो गए थे। घर की भयकर गरीबी भी एक ऊपरी कारण थी जिसने अंतर्मुखी बनाकर आत्मोपलब्धि की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी। लेकिन इसी के साथ उपनिषदों और भगवद्गीता का उनका नियमित अध्ययन और श्री अरविन्द की मित्रता भी उन पर प्रभावी रही। स्वामी विवेकानन्द उनके एक प्रिय लेखक थे। तमिलनाडु के संतों और सिद्धों के गीतों ने भी विचारों की गोपन दिशाओं की उनकी अथक खोज में सहायता की। उनके गीत एक प्रकार के योग बन गए।वे गीत माया के बादलों में प्रवेश करके प्रकाश तक पहुंचने का एक प्रयत्न है

ओ माया। तुम चाहती थीं
मुझे अपने पाश में बांधना
पर निश्चय ही मैं नष्ट कर दूंगा तुम्हें।
जो तैयार है मृत्यु के वरण के लिए
नहीं है बहुत दूर उसके लिए समुद्र—
जिन्हें अनुभव है कि शरीर है मिथ्या
उनका तुम कर ही क्या सकती हो
ओ माया।

भारती के पूजागीत 'मैं' और 'तुम' और 'असत्य', 'विश्वास' और 'संदेह' के अत्यंत विचारोत्तेजक प्रश्न उपस्थित करते हैं। भारती यह महसूस करते हैं कि पूजा से बड़े लाभ होते हैं। वे अपने भटकते मन पर नियंत्रण करने का निरंतर प्रयास करते हैं ताकि वह आत्मोपलब्धि के मार्ग में बाधा न डाल सके।

लगता है कि पांडिचेरी के प्रवास काल में उस मन पर पूरी तरह नियंत्रण कर लेने में उन्हें सफलता मिल गई थी। लंबे निर्वासन के बाद जब वे ब्रिटिश भारत में लौटे तो लोगों ने अनुभव किया कि वे उग्रपंथी देशभक्त की जगह अनासक्त ज्ञानी हो गए हैं। जीवन के अंतिम वर्षों के उनके कार्यकलापों के साक्ष्य इस बात के प्रमाण हैं कि वे जागृतावस्था में आदि से अंत तक एक अन्य स्तर पर, चिंतन के ऊपरी स्तर पर रहे। राजाजी का कथन है कि वह सिर से पांव तक वेदांती लगते थे। संभव है कि देखने पर लगा हो कि उनके कपड़े ठीक ठाक नहीं हैं, कि वह अस्तव्यस्त हैं, कि वह गरीबी के मारे हुए हैं, लेकिन उनकी आंखों को देखने के बाद भ्रम समाप्त हो जाता था। उन मर्मभेदी निगाहों में अथाह ज्ञान और करुणा थी।

फुटकर कविताएं

भारती की फुटकर कविताएं अपनी उत्कृष्ट विविधता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। उनकी विषयगत व्यापकता अद्भुत है। आधुनिकों में भारती सर्वप्रथम कवि हैं जिन्होंने बच्चों के लिए स्वतंत्र ढंग से लिखा। उनकी 'पुर्धाय अतिसदी' उस प्राचीन 'अतिसदी' का ही अनुकरण है जो एक तरफ तो बालकों को तमिल के स्वर और व्यंजनों का ज्ञान कराती है और दूसरी तरफ अच्छे चरित्र निर्माण और अच्छे कर्म की प्रेरणा देती है। बालकों के लिए किए जाने वाले इस नैतिक कार्य में भारती ने अपनी कुछ क्रांतिकारी विचारधाराएं भी जोड़ दीं। अतः उनका पहला उपदेश है 'भय को त्यागो'। दूसरे उपदेशों में हैं, 'हस्तशिल्प का आदर करो' 'हस्तरेखा विज्ञान को निंदनीय मानो,' 'नयी वस्तुओं से प्रेम करो,' 'ज्योतिष शास्त्र सीखो' और 'प्राचीन धर्मग्रंथों का आधुनिकीकरण करो।' इनका सर्वाधिक आकर्षक भाग है प्रार्थना। मूल रूप में इसे शिव को संबोधित किया गया था। लेकिन भारती की प्रार्थना सभी धर्मों की एकता की सीख देती है :

अति की पत्तिया पहले, पूनम के चांद को धारे
आंतरिक तन्मयता में समाधिस्थ श्वेत-रूप
सागर में दीखते गहरे हरे से, उस विराट ने
दिया था मुहम्मद को ज्ञान—
ईसा मसीह के पिता :
भिन्न जातियां पुकारती हैं भिन्न रूप में
उसी एक शाश्वत को—अमर को
उसकी प्रकृति है प्रकाशमान ज्ञान :
जो भी उसे जानता है
मुक्त है चिंता से
हम उस विभूति की प्रशंसा करें

और पाएं अमर जीवन।

इसी तरह की उदार और उच्च नैतिक दृष्टि उनकी प्रसिद्ध कविता 'पप्पा पट्टु' (बाल गीत) में भी मिलती है। बच्चे को बताया जाता है कि वह सारे जीवधारियों से प्यार करे, सच्चा बना रहे, अच्छे शब्दों का प्रयोग करे, अच्छे विचार मन में लाए, निर्भीक बने, जाति का बंधन न माने तथा मातृभाषा और मातृभूमि दोनों से प्यार करे :

उत्तर में हिमवन्त
दक्षिण में कन्याकुमारी
पूरब और पश्चिम में
जोड़ दो सागरों के
वेदों की धरती यह
वीरों की धरती यह
पाक साफ यह हिंदुस्तान
पूजो उसको मां-मा।

नारियों की मुक्ति का विचार भारती के मन को बुरी तरह झकझोरता रहा :

अपनी दो आंखों में से
एक को निकाल कर
क्या हम अपनी दृष्टि
सदा के लिए धुंधली कर लेंगे ?
यदि अज्ञान को भगाना है
तो विस्तार करो
नारियों के क्षितिज का।

'नयी नारी' की प्रशंसा में भारती ने चार ऐसे गीत लिखे जो मोतियों की तरह चमकते हैं। यह नारी शिव के अवतार के रूप में अपने आप में शक्ति बनकर अवतरित होने वाली है। वह एक ऐसी वीरांगना माता होगी जो सभी कठिनाइयों का सामना करेगी और उन्हें पछाड़ देगी। इस तरह की शक्तिशाली नारी जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के बराबर होगी :

गाओ, उसकी विजय के गीत
प्रशंसा करो उसकी
नयी लड़की के रूप में
रक्षा करो इस लपट की,
इस दुनिया को और अच्छे दिनों में
बदलने के लिए
हम सब को अमर बनाने के लिए
भव्य, शालीन नारी का रूप लिया है
शक्ति माता ने स्वयं ही—

सत्य के क्षितिजों को खोलने के लिए
स्वर्ग तक पहुंचाने के लिए।

भारती के समय में इस तरह के भावों की अभिव्यक्ति लगभग विद्रोह की सीमाएं पार कर गई थी। भारती ने इन गीतों की रचना में स्त्रियों द्वारा आए दिन गाए जाने वाले गीतों की तर्ज का उपयोग बड़ी चतुराई से किया था। उनका एक उदाहरण 'कुम्मी' नृत्य है जो दक्षिण भारत की एक विशेष चीज है। इस नृत्य में स्त्रियां एक वृत्त बनाती हैं। पांव की थिरकन की लय के साथ साथ तालियां बजाती हैं। भारती ने उसका अंग्रेजी अनुवाद स्वयं किया था :

और वे बात करते हैं विवाहित विश्वास की–
अच्छाई को होने दो दोनों के लिए मान्य
लेकिन वह परंपरा
(जिसने विवश किया हमें विवाह करने को)
हमने तोड़ दी है – मसल दिया है पैरों के नीचे।
कुम्मी-नृत्य करो – नगाड़े को बजाओ।

लेकिन भारती की यह आधुनिक लड़की सीथियाई मिथक की उस अमेजन की तरह अपने को केवल वीरता या युद्ध तक सीमित नहीं रखती। वह पुरुष की मित्र बनकर सहयोग के आधार पर एक नया निर्माण करने की इच्छुक है :

नारी का धर्म, अधर्म का नाश करता है।
आओ, हम नृत्य करें उनकी प्रशंसा में।

उनके दूसरे गीतों का विषय प्रकृति, शिक्षा और श्रम का आदर है। उनका प्रकृति प्रेम उनकी गद्य कविताओं में सर्वाधिक मुखरित है। प्रकृति का निरीक्षण उनके छोटे गीतों में दृढ़ वेदांतिक विश्वास के रूप में उभरता है और उसी से गीत का अंत भी हो जाता है। 'संध्या के प्रति' गीत का वह अंत :

मंदिर की जिस दीवाल में
प्रतिमा प्रतिष्ठित है
उसे सजाते और दीप जलाते हुए
भक्त एकत्र होते हैं
प्रशंसा करने के लिए उस पराशक्ति की
असंख्य नामों से–
वे नहीं जानते हैं सत्य
आस्था के मंदिर के सामने
संपूर्ण विश्व ही है उसका रूप।
ज्ञान के दीप जलाओ
और प्रार्थना करो युगों युगों तक।

इस तरह के स्मरणीय वर्णन और आंखें खोल देने वाले विचारों की छटा के दर्शन उनके 'चांद, तारे और पवन', 'वर्षा', 'तूफान', 'प्रकाश और अंधेरा' शीर्षक गीतों में भी मिलते हैं। 'आग की एक चिनगारी' शीर्षक उनका सुंदर और संपूर्ण गीत यों है :

मुझे मिल गई संयोग से
अंगीठी से एक छोटी-सी लपट
और मैंने उसे रख दिया
पेड़ के खोखल के बीच;
पूरा का पूरा जंगल हो गया भस्म।
क्या अग्नि की विनाशकारी शक्ति के सामने
है कोई 'छोटा' या 'बड़ा'
बूढ़ा या जवान ?

इसके अतिरिक्त भारती ने दो आत्मकथात्मक कविताएं भी लिखी। पहली का शीर्षक 'एक स्वप्न' है और उसमें 49 पद हैं। इसमें वे अपनी प्रारंभिक शिक्षा की याद करते हैं। वे दसवें वर्ष में कविता के मोहपाश में बंध गए। कुछ वर्ष उन्होंने साथ साथ ऐसे बिताए जैसे 'एक जंगल में दो चिड़ियां, आकाश के देवी-देवताओं की तरह रहती हैं।' इसका अर्थ है कि वे तमिलनाडु के प्राचीन साहित्य में प्रसन्नतापूर्वक रमते रहे। उनके पिता को यह अच्छा नहीं लगा, लेकिन उनके नाना की समझदारी उनके पक्ष में रही। अंग्रेजी शिक्षा के लिए पिता ने उन्हें तिरुनेल्वेली भेजने का निर्णय किया और नाना का वह अनुकूल संरक्षण चूर चूर हो गया। उनका मन अध्ययन में नहीं लगता था, अतः पढ़ाई भी अधिक नहीं हो सकी। अंतिम परीक्षा में वे अनुत्तीर्ण हो गए और संतोषपूर्वक एट्टयापुरम लौट आए। उसके थोड़े ही दिनों बाद भारी आर्थिक घाटे से चिंतित पिता की मृत्यु हो गई। पीछे छूट गया वह परिवार जिसके पास कानी कौड़ी भी नहीं थी। वे विपत्ति के दिन थे। ईश्वर की प्रार्थना के साथ वह वर्णनात्मक कविता इस स्थल पर आकर समाप्त हो जाती है।

दूसरी कविता 66 पदों की है और उसे एक प्रकार से आध्यात्मिक जीवनचरित कहा जा सकता है। आर. ए. पद्मनाभन् के अनुसार, भारती की इच्छा वैष्णव रहस्यवादियों और अलवारों को विषय बनाकर प्रबंधकाव्य लिखने की थी लेकिन यह योजना उन्होंने अधूरी छोड़ दी। तमिलनाडु के घुमंतु औघड़ों से भारती की मित्रता थी। इसे सभी लोग जानते हैं। इन सिद्धयों में काव्य की अपनी एक परंपरा रही है। सत्यमुनि नयनार, तिरुमल नयनार, और पाम्बती सिद्धर आदि कुछ प्राचीन सिद्धों ने आध्यात्मिक जीवन के संबंध में ऐसी व्याख्यात्मक कविताएं लिखीं थीं जिनमें आमतौर पर शिक्षक अपने छात्र को संबोधित करता है। अपनी निम्नलिखित कविता में भारती अपने मित्र भक्त कुवलई कन्नन को संबोधित करते हैं :

मेरे समय में बहुत से सिद्ध हुए
मैं एक दूसरा हूं
जो इस धरती पर आया हूं—

आत्मा पहले मृत्यु की समस्या के आसपास मडराती है और उसके बाद उस पर विजय पाने के तरीके की खोज :

कीलें ठोंकी गई ईसा मसीह को
सलीब पर चढ़ाकर
वह मर गए
कृष्ण को लगा एक तीखा तीर
यहा-तक कि राम की भी हो गई
पानी में मृत्यु
लेकिन मैं नहीं मरूंगा
निश्चय ही नहीं मरूंगा।

काम और क्रोध दोनों ही मृत्यु के कारण हैं। भारती इन दोनों को समूल नष्ट करके हर वस्तु में उस दैविक सत्ता का अनुभावन करना चाहते थे। उनका ख्याल था कि कलम और तलवार तक मे ईश्वर निवास करता है हालांकि दिखाई नहीं देता है। इस कविता में कुल्ला स्वामियार की भारती के प्रति कही गई बुद्धिमतापूर्ण और आवेग से भरी हुई प्रशंसा है। कुवलई कन्नन की प्रशंसा यदि उसके शौर्य के लिए है तो दूसरे स्वामियारों की उनकी आध्यात्मिक महानता के लिए। एक वार्तात्मक कविता गोविन्द स्वामियार को संबोधित करके लिखी गई है जिसमें यथार्थ को उघारते हुए उस जाति और वर्ग संघर्ष की निंदा की गई है जो राष्ट्र की संपन्नता के मार्ग में बाधा डालते रहे हैं। आत्मकथा शैली में लिखी गई, यह अधूरी आध्यात्मिक कविता इस तथ्य की मौन साक्षी है कि उनके असमय निधन से तमिल साहित्य को कितनी भंयकर क्षति उठानी पड़ी। उन्होंने 6 हजार कविताओं की योजना बनाई थी किंतु 66 ही लिख सके। उनका अंत गोविन्दस्वामी की इस घोषणा से होता है :

सारी दुनिया के विश्वास केंद्र पर स्थित
मै दूंगा तुम्हे एक शब्द
एक आश्वासन
तुम ईश्वर हो—तुम ईश्वर हो
तुम्हीं हो ईश्वर
तत्वम् असि, तत्वम् असि
तुम्हीं हो वह :
वह तो अज्ञानता का कंबल है
जो कहता है कि तुम नहीं हो ईश्वर

इस धरती क
तुम ईश्वर हो
अंधकार के पर्दे को हटाओ
और कहो :
'मैं शिव हूं :
शाश्वत और अमर'।

कन्नन पट्टु

भारती के कृष्ण असख्य क्षमताओं के ईश्वर थे। अलवारों ने उनकी कल्पना बालक और प्रेमी के रूप में की थी और उनकी प्रकाशमान विराटता के गीत गाए थे। भारती की कल्पना ने कुछ नए पहलुओं का स्पर्श किया। उन्होंने कृष्ण को मित्र, माता, दास, राजा, छात्र, शिक्षक, बच्चा, प्रेमिका, देवी और प्रगल्भ बालक के रूप में देखा और उनकी प्रशंसा में आनंदमग्न होकर गीत गाए। ईश्वर के प्रति यह एक निराली दृष्टि है जो यह बताती है कि प्रेम व्यक्ति को कुछ भी करने के लिए निर्भीक बना देता है और ईश्वर हर स्थान पर और हर वस्तु में विद्यमान है। भारती के विश्वास में इतनी तीव्रता थी कि वह निरंतर कृष्ण के चिंतन में डूबे रहते थे। इसीलिए उन्होंने कृष्ण पर जो गीत लिखे वे हमें हृदय की गहराइयों में बहा ले जाते हैं। भारती अपनी विद्वता का दंभपूर्ण प्रदर्शन नहीं करते। न ही इन गीतों में ऐसा कुछ है जिसे झूठी प्रशंसा की संज्ञा दी जा सके। कवि अपनी अभिव्यक्ति में आद्यन्त स्वाभाविक है। भक्त और देव, दोनों ने एक-दूसरे का चुनाव किया है। उनके खेल में जो उल्लास है वह पारस्परिक है।

'कन्नन पट्टु' में 23 गीत हैं। इसका पहला प्रकाशन 1917 में पारलइ नेल्लप्पा की भूमिका के साथ हुआ था। गीतों का छंद विधान बहुत सरल है। वे इंद्रियों को झकझोरते हैं। उनका अर्थ श्रोताओं के मन में उसी स्वाभाविकता के साथ उतरता जाता है जिस तरह वसंत के दिनो में गाती कोयल की धुन। महान कविता संबंधी भारती के दृष्टिकोण का परिचय उनके अपने ही गीत भी बहुत स्पष्टता के साथ देते हैं :

"वे लोग जो ऐसे साहित्य की रचना करते हैं जो सामान्य पाठक की समझ में नही आता, उस शक्ति को एक निपट काली चीज से ढक देते हैं। वे उस शक्ति को मोतियों से सफेद कपड़े में लपेटते नहीं। जो साहित्य बोधगम्य है, सत्य पर आधारित है, वही शाश्वत होता है। जिस साहित्य में इस तरह की जीवतता होती है उसे ही प्रेरणामूलक कहा जा सकता है।"

'कन्नन' के गीत संगीतज्ञों में बहुत लोकप्रिय हैं। पांडिचेरी निर्वासन के समय वे स्वयं भी इन गीतों को बहुत रुचिपूर्वक गाया करते थे।

कृष्ण के विचार ने भारती को हर तरफ से खींच कर अपने में केंद्रित कर लिया था। वे जिस विषय पर चिंतन करते थे उसी में कृष्ण दिखाई देते थे। अतः कृष्ण ही वह सत्य हैं जो प्रकृति की हर अभिव्यक्ति के मूल में विद्यमान है। मनुष्य के अनंत रूपों के पीछे वही एक सत्य है। कृष्ण के प्रति उनका यह दुहरा दृष्टिकोण हमें अलवारों की तन्मयता की याद दिलाता है। लेकिन इसके बावजूद उन गीतों की संगीतात्मक जीवंतता तथा स्वच्छंद अनूठे बिंब भारती के अपने हैं। वे इस उत्कृष्ट संग्रह को तमिल साहित्य में एक अद्वितीय स्थान देते हैं। प्रमाण के लिए, 'कृष्णः मेरे सखा' शीर्षक उनका गीत :

क्या कोई रास्ता है, स्वर्णदेही
सुभद्रा को हर ले जाने का ?
कृष्ण ने क्षणों में एक तरकीब सोची
और उसे अमल में लाने को तैयार
'मैं नहीं जानता कि उस अद्वितीय
धनुर्धारी कर्ण को कैसे मारा जाए
लेकिन तुम मेरी शरणागत हो'।
कृष्ण ने क्षणों में एक तरकीब सोच ली।

प्रेम हो या युद्ध, दोनों में कृष्ण अनिवार्य है और अपने मित्र के लिए निरंतर सहायक सिद्ध होते हैं। लेकिन उसी के साथ साथ वे उन लोगों के मित्र हरगिज नहीं हैं जिनके हृदय में झूठ है, जो घमंडी हैं और जो सचाई का पल्ला जोर से नहीं पकड़े होते हैं।

'कृष्ण : मेरी माता' शीर्षक गीत में अभाव की गहन पीड़ा है। भारती की माता का देहांत तभी हो गया था जब वे बहुत छोटे थे। कृष्ण को पिता, दास, छात्र और शिक्षक रूप में देखने की उनकी कल्पना बहुत दृढ़ है। कृष्णः मेरा बच्चा' एक अद्‌भुत प्रार्थना है :

क्या उस वृहदाकार ग्रंथ
की कहानियां भी उतनी ही
आकर्षक हैं,
जितनी कि तुम्हारी ?
प्यार देने में
कौन-सा ईश्वर
कर सकता है तुम्हारा साम्य ?

इस प्रकार कवि हमें यह अनुभव करने की स्थिति में लाता है कि एक ही भगवान की विराटता के कितने प्रकाशमान रूप हैं। हम उसके देवत्व और मानवीयता का, उसके वास्तविक स्वभाव का, अनुभावन करते हैं जो वयस और लिंग के वर्गीकरण से ऊपर उठा

हुआ है।

भारती ने अपनी आकांक्षा, अपनी खोज और अपने अंतिम अनुभव (उपलब्धि) को पाठकों के लाभ के लिए बड़े नाटकीय ढंग से व्यक्त किया है। वह खोज, वह 'आत्मा की काली रात' और वह दृष्टि सभी 'कृष्ण : मेरी प्रेमिका' शीर्षक गीत में अत्यंत कुशलता से बिंबित है :

मछुए की बंसी में फंसे हुए कीड़े-सा
हवा में लपट-सा
मेरा हृदय पीड़ा से कांपता रहा
देर तक—बहुत देर तक।
पिंजड़े में कैद तोते की तरह
मैं दुखी होता रहा अकेले
मीठी से मीठी चीजें
मेरी जिह्वा पर आते-आते
कड़वी हो गईं।
एक बार नींद में देखा
जैसे एक स्वप्न :
एक निपट अजनबी ने स्पर्श किया
मेरे हृदय को
और मैं ज्योंही जगा
वह हो गया अंतर्धान :
और तभी—सिर्फ तभी
मेरा मन झूम उठा खुशी में
पोर-पोर में भर गया उल्लास
प्रिय मित्र।
स्वास्थ्य फिर सुधर गया
और घर एक बार फिर
आराम की जगह हो गया
मेरी निगाहों में आ गई
एक टटकी चमक
मैं करने लगा हर एक से प्यार।
भय भाग गया, सौंदर्य पास आया
जैसे ही मैंने मन ही मन अनुभव किया
उस शीतल मधुर स्पर्श को
शरीर थिरक पड़ा नए सिरे से

एक अद्भुत शांति हो गई मेरी
मैं चकित था यह सोच कर
कि वह कौन हो सकता है
अरे यह क्या ?
कृष्ण का स्वरूप
मेरी दृष्टि में उतर गया।

भक्त द्वारा देवी की खोज 'प्रेमिका' शीर्षक की एक अन्य कविता में भी अत्यंत नाटकीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है। वह एक घने जंगल में कृष्ण की खोज करती है। तभी वासना का एक शिकारी उसे संबोधित करता है। उसका अंत हमें आश्चर्य में डाल देता है। क्या वह शिकारी माया का रूप था जो कृष्ण के अवतरित होते ही विनष्ट हो जाता है ? या वह कृष्ण भगवान स्वयं थे जो उसे चिढ़ाने के लिए या उसके विश्वास की परीक्षा करने के लिए उस रूप में सामने आए थे ? यह भुला देने के लिए कि वह 'क्या' था, लेकिन यह याद करते हुए कि वह 'कैसा' था, 'प्रेमिका' शीर्षक कविता एक आह के साथ समाप्त हो जाती है :

आह, मेरे मित्र।

क्या मैं यह कहने का साहस करू
कि वह प्रिय चेहरा विस्मृत हो गया है ?
हृदय विस्मृत नहीं कर सका है प्यार को
तब कैसे भूल जाता है दिमाग चेहरे को ?
मधु को भूलती मधुमक्खी,
प्रकाश को भुलाते हुए फूल
आकाश को भूलती हुई धरती—
क्या दुनिया में यह भी संभाव्य है ?

विशुद्ध प्रेम अपने को जीवित रखने के लिए किसी बिंव की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता।

कृष्ण पुनः नारीत्व के एक अनिवार्य तत्व बन जाते हैं। आभा, अच्छाई और चमक दमक से संपन्न नारी। वह एक संकोचशील कुमारी है जो अपने प्रेमी की तीव्रता और आवेग से भरी चाह के आगे पराजित हो जाती है या अपने को प्रकृति में विलीन करके हर स्थान पर उपलब्ध होती है

मैंने देखा तुम्हारा चेहरा
        लहराते समुद्र में
नीले आकाश में
मैंने देखा तुम्हारा चेहरा

उस गाढ़े फेन में
इन छोटे बुलबुलों में।
बादल के एक एक इंच में
खोजते हुए
मैंने पाया तुम्हारा चेहरा
सिर्फ तुम्हारा चेहरा और कुछ नहीं
(और कुछ नहीं)
अपनी पीठ पर फुदकती
खिलखिलाहट को सुनकर
मैंने खींचा तुम्हारे हाथों को एक ओर
और मुड गया पीछे
पाने को तुम्हारा चेहरा।

कृष्ण को प्रेमिका रूप में चित्रित करने वाली कविताओं मे एक ऐसी भी है जिसमें यह भाव अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा है। उस कविता में 'मैं और तुम' का विरोध खत्म होकर एक मित्रता में बदल जाता है। यह मित्रता अंशों को जोड़ कर समग्रता का रूप दे देती है। ऊपर से कई दिखने वाले अस्तित्वों में केवल एक रह जाता है। उस नाटकीय गीत की मौलिक लय बहुत तीव्र है। उसकी रक्षा कवि ने अपने ही द्वारा अनूदित अंग्रेजी गीत में सुंदर ढंग से की है। उसमें दैवी सत्ता के प्रतीक कृष्ण को प्रमिका स्त्री के रूप में दिखाया गया है और मानवात्मा ही उसका प्रेमी है :

मेरे लिए तुम एक फैलता प्रकाश हो
तुम्हारे लिए मैं एक दृश्य
(देखते तुम जिसे मन की आंख से)
मेरे लिए तुम एक मधुर और खिला हुआ फूल,
मधुमक्खी मैं, तुम पर मुग्ध।
किरणों से प्रकाशमान, ओ स्वर्गिक द्वीप,
ओ मेरे प्यार, कृष्ण, ओ अमृतधार !
मैं खोज रहा हूं तुम्हारी भव्यता को
बखानने वाले शब्द
जिन्हें मैं उच्चारित कर सकूं
अपनी लड़खड़ाती ज़बान से
जैसे जीवन के लिए धड़कन
अंगूठी के लिए स्वर्ण
आकाश के लिए तारे
वस्तुओं के लिए प्राण

ओ मेरे कृष्ण ! ओ मेरे प्यार,
वैसे ही तुम हो मेरे लिए।
तुम्हीं हो शक्ति
मैं हूं तुम्हारी जीत
तुम में हैं धरती और स्वर्ग के
सारे उल्लास
तुम से हैं जन्मते
ओ शाश्वत प्रकाश। ओ अनंत शक्ति !
ओ, मेरे हृदय । ओ, ज्योतिपुंज। ओ ज्योतिपुंज।

इस प्रकार 'कन्नन पट्टु' विभिन्न तत्वों का एक समन्वित रूप है। ऐसा लगता है कि इसके माध्यम से ईश्वर ने अपने को मिट्टी में प्रविष्ट करके लौकिक जीवन को स्वर्गीय जीवन में रूपांतरित किया है। कृष्ण वैदिक द्रष्टा हैं, अर्जुन के बंधु हैं, राधा के प्रेमी हैं, जीवनदायिनी माता हैं, आध्यात्मिक गुरु हैं और कुवलई कन्नन नाम के छात्र हैं, लेकिन वे अपनी वास्तविकता को सदा छिपाए रहते हैं। अपने इन मानवीय प्रयत्नों की आजमाइश के बाद ही भारती को वह अंतर्दृष्टि मिली जिससे वे कृष्ण को ईश्वर या स्रष्टा के रूप में देख सके। उस स्रष्टा के चरणों में अपने को पूर्णरूपेण समर्पित कर देने पर सारे संदेह, खुशियां, क्रोध, भय और चिंताएं समाप्त हो जाती हैं और उनके बदले में एक परम शांति उपलब्ध होती है :

मैं तुम्हारी शरण में हूं।
कृष्ण ओ माता,
मैं शरण लेता हूं तुम में।

पांचाली सप्तम

अपने इस महाकाव्य को भारती ने महर्षि व्यास के महाभारत के कुछ स्थलों का अनुवाद कहा है। इसमें पर्याप्त सचाई है। सारे दृश्य, जैसे जुए का खेल, विकर्ण का सत्य और उचित के प्रति आग्रह, द्रौपदी का अपमान, भीम का विस्फोटक क्रोध, अर्जुन का तुष्टिदायक उत्तर ये सभी घटनाएं महाभारत में हैं, लेकिन भारती इन सारी घटनाओं और चरित्रों को एक आधुनिक स्पर्श और विषयानुकूल व्यंजना देते हैं। उनका उद्देश्य ही था कि वे आधुनिक तमिल को एक ऐसा महान महाकाव्य दें जो पांडित्य और अस्पष्टता की मध्यकालीन प्रवृत्ति से मुक्त शैली और वाक्य विन्यास में इतना सरल, इतना बोधगम्य और इतना गेय हो कि जनसाधारण द्वारा पसंद किया जा सके। 'पांचाली सप्तम' के प्रथम भाग का प्रकाशन 1912 में और दूसरे भाग का उसके 12 वर्ष बाद हुआ। हालांकि भारती का महाकाव्य महाभारत के उस एकमात्र संकट पर केंद्रित है लेकिन वही व्यास के महाकाव्य की भी धुरी है। प्रारंभ की सारी घटनाएं पाठकों को उस समय भयंकर क्षण तक ले जाती हैं जहां दुःशासन द्रौपदी का चीरहरण करता है। पाठक आदि से अंत तक अपनी सांस रोके रह जाता है। तभी एक चमत्कार होता है और जीवन फिर अपनी स्वाभाविक गति में आ जाता है। दोनों ही पक्ष (पांडव और कौरव) स्वयं यह अनुभव करने लगे थे कि संकट जिस बिंदु पर पहुंच चुका है वहां से वापसी नहीं है। उसके बाद की जो घटनाएं हुई उनमें कुरुक्षेत्र का वह भीषण युद्ध है जो, पश्चाताप में ही सही, लेकिन उस क्षण की अनिवार्यता बन कर सामने आया। भारती ने उसी क्षण को पकड़ा और दुर्योधन के उन प्रारंभिक उद्देश्यों के बाद के उसके वादों से जोड़कर एक ऐसी कविता की रचना की जो शिल्पगत उत्कृष्टता की दृष्टि से प्रौढ़ तो हुई ही, उसमें एक दुखांत नाटक की तीक्ष्णता और महाकाव्यत्व के प्रवाह की भी रक्षा हुई।

महाकाव्य में 5 सर्ग हैं : प्रथम सर्ग 'दुर्योधन का षड्यंत्र' है जो एक प्रार्थना के साथ शुरू होता है। हम हस्तिनापुर का शहर देखते हैं जो हर दृष्टि से वैभव संपन्नहै। तत्काल

बाद ही हम दुर्योधन के दरबार में पहुंचते हैं और वहां हमें उसके मन में पलने वाले कलुषित विचारों की एक झलक मिलती है। ईर्ष्या करने का पाप ही कैंसर हैं :

गांडीवधारी अर्जुन की घूरती हुई दृष्टि में
और विशालकाय भीम के कंधों पर
अंकित है मेरी शर्म
ओ, मैं ही दुःख हूं।

बचपन से ही दुर्योधन के मन में पांडवों से, विशेषकर भीम से, ईर्ष्या थी। राजसूय यज्ञ अत्यंत सफल सिद्ध हुआ था। दुर्योधन के मन ने उसकी भव्यता को भुलाना स्वीकार नहीं किया।

जिस तरह धरती की गहरी धुरी से
फूटती है धधकती हुई आग
और उसकी भयंकर ज्वाला पिघला कर चट्टानें
लावा-सी बहती और फैल जाती हैं —
वैसे ही, उसके हृदय की ईर्ष्या का ज्वालामुखी
विस्फोटित हो गया उसके मन और मस्तिष्क में
पिघल गई उसकी सारी मानवता
उसकी सारी शक्ति
और नष्ट हो गए शौर्य और मान।

वह चीखता, बड़बड़ाता हुआ अपने मामा शकुनि के पास जाता है और उनसे वकालती लहजे में कहता है कि जैसे भी हो प्रतिशोध लेना है। छोटे मोटे, सही या काल्पनिक कारणों से अलग, दुर्योधन ने उस क्षण अपने को सर्वाधिक अपमानित अनुभव किया था जब वह संगमरमर के फर्श पर लड़खड़ा कर मूर्च्छित हो गया था और निर्दोष द्रौपदी ने उसकी मूर्खता पर हंस दिया था। उसने निर्णय किया कि द्रौपदी और पांचों पांडवों को भिखारी बना कर सड़कों पर भटकने के लिए मजबूर कर दिया जाए। शकुनि जुए के खेल का सुझाव देते हैं। धृतराष्ट्र इसे एक अनैतिक कार्य मान कर रोकना चाहते हैं लेकिन दुर्योधन अपने वृद्ध पिता का विरोध करता है। बूढ़े राजा दुर्घटना की कल्पना से दुखी अवश्य होते हैं लेकिन अपनी चुप्पी द्वारा उन घटनाओं को अपना रूप लेने की अनुज्ञा भी देते हैं। विदुर युधिष्ठिर को चेतावनी देते हैं कि वह दुर्योधन के जाल में न फंसे पर उसके बावजूद युधिष्ठिर दुर्योधन की चुनौती को एक दार्शनिक की तरह स्वीकार कर लेते हैं। 'कर्तव्य' के नाम पर वे हस्तिनापुर में जुए के खेल में शामिल होने के लिए अपने भाइयों का नेतृत्व करते हैं

दूसरे सर्ग में 'जुए के खेल' का वर्णन है जिसमें पांडव राजकुमारों को धीरे धीरे अपना सब कुछ हार जाते हुए दिखाया गया है। विदुर के बुद्धिमतापूर्ण सुझाव का उन पर कोई

प्रभाव नहीं पड़ता। तीसरे सर्ग में हम देखते हैं कि जुए के परिणामस्वरूप पांडव अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता खोकर दुर्भाग्य की सबसे निचली खाई तक पहुंच चुके हैं। अंत में द्रौपदी को दांव पर लगाया जाता है। चौथे सर्ग में द्रौपदी के अपमान की चर्चा है। उसका प्रारंभ बहुत सबल ढंग से यों होता है:

क्या कोई मार डालेगा अपने प्रिय बच्चे को
उस चाम के लिए
जिससे जूता बन सके ?
क्रुद्ध राजकुमारों के जुए के खेल में
क्या पांचाली को रखना चाहिए था।
दांव पर ?

यह दृश्य हृदय को बुरी तरह विदीर्ण कर देने वाला है। भयभीत और असहाय पांडव, विजय के गर्व में उन्मत्त दुर्योधन और उसके साथी, निरर्थक बहस और निंदा में उलझे हुए विदुर और दासी बन चुकी द्रौपदी के लिए चिल्लाते हुए दुष्ट कौरव राजकुमार। इस प्रकार हम अंतिम सर्ग 'प्रतिज्ञा' शीर्षक पर पहुचते हैं। कौरवों के दरबार में दुःशासन द्रौपदी की साड़ी पकड कर खींचता है, उसे नंगा करना चाहता है। एक भी क्षत्रिय उसके बचाव के लिए आगे नहीं आता। जुए के खेल में पराजित होने के कारण पांडव भी मानवीयता के स्तर से नीचे गिर चुके हैं। द्रौपदी के सारे आग्रह बेकार सिद्ध होते है। यहां तक कि श्रद्धास्पद भीष्म भी मानसिक दुर्बलता के शिकार हो जाते हैं, वे भी मतभ्रष्ट है :

वह था प्राचीन काल
जिसमें बराबर थे स्त्री और पुरुष
लेकिन अब बदल चुका है सारा वक्त
स्त्री अब घटिया है पुरुष से
हो सकती है उसकी बिक्री
दी जा सकती है उपहार में
वह पशु-सी
धर्म बेच देने को दासी-सा तुम्हें
देता है अनुमति।
जानता हूं , वे क्या कर रहे हैं यहां
जो भी परिस्थिति है, बिल्कुल दुर्जेय है
शास्त्र और रीति या रिवाज भी
तुम्हारे विरुद्ध हैं –
और मैं भी अशक्त हूं
इस बुराई को रोकने में।
द्रौपदी उत्तर देती है

अच्छी बात कही,
शानदार बात कही, आपने श्रीमान्
सीता को हरने और अशोक वाटिका में
रखने के बाद
जब दुष्ट रावण ने अपने मंत्रियों
और कानूनी सलाहकारों को बुला कर
सुनाया अपना कृत्य
घोषणा की उन्हीं बुद्धिमान सलाहकारों ने
आप ने जो कुछ भी किया वह उचित है
धर्मानुकूल है।
जब भी धरती पर राज करता है
कोई दुष्टात्मा राजा
तब तब शास्त्र उगलते हैं कूड़ा।
सुनो ! सुनो ! ओ, उपस्थित लोगों
तुम्हारी भी बहनें हैं, पत्नियां हैं
क्या यह कृत्य
स्त्री पर अपराध नहीं है ?
होगा तुम सब का सर्वनाश।
आह, बेकार है मेरा प्रलाप।

कौरव पक्ष से विकर्ण की अकेली आवाज विरोध में उठती है। लेकिन वह आवाज क्रुद्ध कर्ण के इस वाक्य के नीचे दब जाती है। "द्रौपदी को नग्न करके संसार को यह दिखा दो कि अब वह रानी न होकर दुर्योधन के महल की दासी है।" राजा के उस दरबार में सैकड़ों योद्धाओं के बीच द्रौपदी घोर अन्यायपूर्ण अपमान और बदनामी का शिकार होती है। दरबारियों की स्थिति रंगे हुए चेहरों वाले विदूषकों से भी बुरी है। जिस समय दुःशासन द्रौपदी की साड़ी खींचना शुरू करता है वह जानती है कि उसे किसी भी तरह अपनी रक्षा करनी है; अन्यथा ? लेकिन रक्षा का उपाय क्या है ? कहां है वह रक्षक जिसे बुलाया जा सके ? असहायता के उस क्षण में वह अपने को पूरी तौर पर ईश्वर के प्रति समर्पित कर देती है। ईश्वर में उसका घोर विश्वास है। वह लौकिक सहायता को अंतिम रूप से अस्वीकार कर चुकी होती है। वस्त्र के खिंचने की चिंता छोड़कर, हाथों को ऊपर उठाती है। उन्हें जोड़कर विश्वास की अंतिम स्थिति में इस तरह आ जाती है जिस प्रकार बच्चा अपनी मां की ओर विश्वास से झपट कर बढ़ता है। गीता के अपने तमिल अनुवाद की भूमिका में "सारे.......दूंगा," इस आशय के श्लोक की व्याख्या करते हुए भारती ने लिखा है :

"श्री रामानुजाचार्य ने भी यह उपदेश दिया था कि जब कोई व्यक्ति संसार के समुद्र

में फंस जाए तो उसे अपने हाथ ऊपर उठाकर ईश्वर के प्रति उसी तरह समर्पण कर देना चाहिए जिस तरह पानी में डूबता हुआ व्यक्ति अपने हाथ ऊपर उठा लेता है। (तात्पर्य यह है कि हाथ की हर प्रकार की क्रिया को समाप्त कर देना चाहिए)। इसी आत्मसत्य की अभिव्यक्ति प्रह्लाद और द्रौपदी के जीवन में भी हुई। द्रौपदी ने अपनी साड़ी हाथ से दबा रखी थी। उसने भी जब उसकी चिंता छोड़कर हाथों को सिर से ऊपर तक उठा लिया तभी भगवान कृष्ण की उस पर अनुकंपा हुई और उसकी लाज बच सकी। साडी उसके शरीर पर बढ़ती और लंबी होती रही और उससे दु:शासन के हाथ बंध गए।"

वह अत्याचार और दुष्टता के कुहरे में ढकी हुई थी। उसे चीर कर ऊपर बहुत ऊपर उठती हुई उसकी आवाज धीरे धीरे एक सघन प्रार्थना में बदलकर कृष्ण के देवत्व की गुहार करती है :

आकाशों के भीतर के आकाश
पंच तत्वों के तत्व
तपस्या में रत, संतों और ऋषियों
के हृदय में भरते हो तुम्हीं आलोक
तुम प्यार से पकड़ते हो
        अपनी उस सहचरी लक्ष्मी का हाथ
जो बसती हैं जंगल के ताल में
        खिले हुए कमल में—
हर प्रारंभ के तुम हो प्रारंभ
तुम्हीं हो किनारा और केंद्र हर ज्ञान के—
सारे प्रकाशों के तुम्हीं हो प्रकाश
तुम्हीं हो उस गरुड़ पर आसीन
जो उडता है, बहुत ऊपर आकाश में।
सत्य की ज्योति, ओ कृष्ण।
तुम्हारी महिमा अपार है, भव्य है;
सुनो मेरी पुकार।
रक्षा करो मेरी।

यह प्रार्थना, जिसमें आदि काल से ही स्त्रियों द्वारा झेले जा रहे दुखों को वाणी दी गई है, उस महाकाव्य का ऐसा सर्वाधिक चमकदार हीरा है जो स्वयं एक प्रकाशमान मोतियों की माला है। अपने मूल रूप में प्रार्थना का हर शब्द अपनी सच्ची अभिव्यक्ति में सही स्थान पर रखा गया है :

वह चीखी, और उसकी आवाज
फैल गई
असत्‌वादी के दुखों-सी

स्त्री की करुणा-सी
चतुरों की प्रसिद्धि-सी
उफनाए सागर की लहरों-सी।

उसकी प्रार्थना सुन ली जाती है और उसे बचा लिया जाता है। इसे एक चमत्कार कहा जा सकता है, लेकिन चमत्कार कभी कभी घटित होते ही हैं। ईश्वर एक वास्तविकता है। उसकी स्थिति कुएं के प्राणवान जल की तरह है जो हिंदू जीवन पद्धति को आज भी रक्षित कर रही है।

जब थका हुआ दुःशासन मूर्छित हो गिर पड़ा :

एकत्र राजा चिल्ला पड़े जोर से
जय हो, शक्ति की जय हो।
सिर्फ शर्म से सिर को लटकाए रहा सर्पवंशी कुरु।

आंखों को चौंधिया देने वाले इस दृश्य के बाद कुछ घटनाएं और होती हैं। द्रौपदी एक भयंकर प्रतिज्ञा करती है। के. आर. श्रीनिवास अय्यंगार के शब्दों में, "द्रौपदी उस बौनी मानवता के, जिसने उसे अपमानित और बरबाद करने का षड्यंत्र किया था, सिर पर सवार हो गई। उस अकेली का क्रोध, अपनी अंतिम सीमा पर पहुंच चुका था। डूबता हृदय कृतज्ञता के सुख में पुनः उबरने लगा था, आंखों से विनाशकारी चिनगारियां फूटने लगी थीं। वह प्रतिशोध लेने वाली एक भयंकर चंडी के रूप में बदल जाती है। अपने क्रोध के ज्वालामुखी के विस्फोट में, प्रचुर मात्रा में बाहर फैली चीर को चीथने लगती है, फुत्कार करते हुए उन आततायी जालिमों की ओर मुड़कर एक ऐसी भंयकर, अटल प्रतिज्ञा करती है जिसका अर्थ है कौरवों का समूल विनाश।"

भीम दुर्योधन और दुःशासन को समाप्त करने की प्रतिज्ञा करते हैं। अर्जुन की प्रतिज्ञा है कि वे कर्ण का सर्वनाश करेंगे। लेकिन द्रौपदी की प्रतिज्ञा अपनी भयंकरता में उन दोनों से आगे है :

जब तक दुष्ट दुःशासन का खून
दानव दुर्योधन के खून से नहीं मिलता
और उसमें मैं अपने केशों को
धो और नहला नहीं लेती
तब तक मैं इन्हें बांधूगी नहीं
तब तक ये ऐसे ही
खुले और बिखरे रहेंगे।

नारीत्व के अंतिम रूप से अपमानित हो जाने के बाद ही वह सताई हुई स्त्री की तरफ से अटल प्रतिज्ञा करती है। भारती निश्चय ही भारतीय स्त्री की उस स्थिति की भविष्यवाणी करते हैं जब हर एक स्त्री न केवल मां बल्कि शक्ति-मां बन जाएगी। ऐसी शक्ति जो धरती पर रहने वाले पुरुषों के जीवन के लिए अनिवार्य होती है।

भारती की द्रौपदी भारत की राजनैतिक जागरुकता का भी प्रक्षेपण है। पी. महादेवन् उस पूरे महाकाव्य में भारती के राजनीतिक विरोध की अभिव्यक्ति देखते हैं। इस प्रकार द्रौपदी भारतमाता है और दुर्योधन तथा उसके साथी शोषण की विदेशी शक्तियां हैं। भीष्म नरमपंथियों के प्रवक्ता हैं। यदि इस समानता को और आगे तक बढ़ाया जाए तो भीम को कट्टर उग्रपंथी और अर्जुन को सत्याग्रह-शक्ति का प्रतीक माना जा सकता है। भारती प्रारंभकाल में उग्रपंथी थे। बाद के वर्षों में उनकी आस्था गांधी जी की अहिंसा से जुड़ गई। इस महाकाव्य की रचना उन्होंने इन दोनों स्थितियों के बीच के समय में की थी। लगता है कि अर्जुन के शब्दों में भारतवर्ष की 1918-19 की स्थिति का सारांश है :

"आज हम विवश हैं, अतः हमें धैर्य के साथ इसे बर्दाश्त करना चाहिए। समय अवश्य बदलेगा, धर्म की विजय होगी। मेरा शक्तिशाली धनुष गांडीव यहीं है।"

एक बात निश्चित है। द्रौपदी बेड़ियों में जकड़ी भारतमाता का प्रतिबिंब है लेकिन अवधिहीन जीवन के कठिन से कठिन क्षणों में भी उसमें कोई आदेश न मानने की निर्भीकता है। पांडिचेरी निर्वासन के समय भारती की इच्छा यह भी थी कि वे भारतमाता को स्वतंत्र और प्राचीन वैभव से संपन्न देख सकें। निश्चय ही उनकी धारणा थी कि महज दैवी चमत्कार ही उसे मुक्ति दिला सकता है। जब उग्रपंथी और नरमपंथी दोनों खामोश हो जाएंगे और देश सत्याग्रह की उस आत्मिक शक्ति के प्रति समर्पित हो जाएगा तभी मुक्ति का चमत्कार सामने आ सकेगा। इस दृष्टि से भारती की कविता गांधीवादी आंदोलन के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने की एक भविष्यवाणी थी। द्रौपदी महाशक्ति का भी स्रोत है और सृष्टि सत्ता का भी। विश्व के इतिहास में ऐसे क्षण आए हैं जब मनुष्य के साधन और प्रयत्न असफलता के शिकार हो गए हैं। ऐसे क्षणों में धरती पर पराशक्ति सक्रिय होती है। श्री अरविन्द ने 'सावित्री' की आत्मशक्ति द्वारा सत्य की रक्षा की चर्चा की है। भारती द्रौपदी की उस सात्विक शक्ति की चर्चा करते हैं जिसने धर्मयुद्ध में विजय प्राप्त करके पांडवों की रक्षा की। द्रौपदी की वास्तविक प्रकृति शक्ति की है और इसी तथ्य पर पूरे महाकाव्य में बल दिया गया है। जुए के दांव पर रखी गई द्रौपदी से शक्ति निकल कर स्वर्ग में चली गई। जब ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य भय से शिलावत हो गए थे; वह केवल शक्ति थी जिसे नए जीवन की प्राप्ति हुई थी :

यौवन से उद्वेलित उमा
स्वयं थीं शक्तिमान काली
अपने भयंकर धनुष के साथ
मौलिक शक्ति
वह महामाया
जो नष्ट करती है माया या भ्रम
और सिंह पर सवार
मुस्कराते हुए
रक्षा करती है।

यह शक्ति उठी और द्रौपदी में समा गई। अब विजय निश्चित है क्योंकि द्रौपदी के अस्तित्व में वीर रस प्रवेश कर गया। आहत और अपमानित रानी, पुरुषों की दुनिया में अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए संघर्परत नारीत्व, स्वतंत्रता के लिए लड़ती हुई भारतमाता और अपनी विराटता और भव्यता में महाशक्ति ! ये चारों तत्व उस अमर चरित्र में प्रवेश कर जाते हैं जो कौरवों की सभा के बीच मनुष्यों से विमुख होकर ईश्वर की ओर उन्मुख हो चुका है।

कुइल पट्टु

'कुइल पट्टु' एक वर्णनात्मक कविता है जो अंग्रेजी के मुक्तछंद से मिलते-जुलते अहवाल छंद में लिखी गई है। 750 पंक्तियों की यह कविता एक भारतीय बुलबुल, एक बैल और एक बंदर का आख्यान है। मानव चरित्रों में एक है राजकुमार और दूसरा कवि। यह आख्यान, जो एक प्रकार से सौंदर्य और प्रेम का प्रत्याभास है, कवि को स्वप्न में मिला था।

समालोचकों की दृष्टि में भारती की तीन लंबी रचनाओं में (अन्य दो हैं 'कन्नन पट्टु' और 'पांचाली सप्तम') यही कविता विशुद्ध काव्य की दृष्टि से सर्वोत्तम है। प्रोफेसर टी. पी. मीनाक्षिसुन्दरम तो इसकी तुलना में दान्ते की 'डिवाइन कॉमेडी' तक पहुंच जाते हैं और 'कुइल पट्टु' को आत्मा का महाकाव्य घोषित करते हैं।

आख्यान यह है : कवि एक दिन पांडिचेरी की सीमा से सटे हुए आमों के एक बाग में आराम करने के लिए जाता है। वह स्थल बहुत शांत है। महज एक मादा कोयल कुछ नर कोयलों से घिरी हुई गा रही है। उसकी संगीतात्मक धुन के कारण कवि को झपकी आ जाती है। तब वास्तविकता स्वप्न के एक ऐसे दृश्य में बदल जाती है जिसमें मादा कोयल प्रेम के अस्थायित्व पर क्रंदन कर रही होती है। प्रेम-मृत्यु, सुख-दुख व्यवस्था-अव्यवस्था, प्रसिद्धि और बदनामी आदि चीजें हैं जिन्हें कोयल अपने संगीत में पिरोती है :

प्रेम, आह अनंत प्रेम।
और प्रेम असफल हो जाता है
मृत्यु, सदा के लिए मृत्यु।
उल्लास, अनंत उल्लास :
और उल्लास खत्म हो जाता है
दुःख, दुःख ही दुःख।
कितना स्वर्गिक है कविता का स्वर !
लेकिन जब टूट जाती है लय

तब केवल उलझाव और अस्पष्टता।

वे पक्षी की तरफ तब और अधिक तीव्रता से आकर्षित हो आते हैं जब उसके संगीत या श्रोता युग्म उसे अकेले और दुखी छोड़कर दूर उड़ जाते हैं। वे पक्षी से पूछते हैं कि उसने उदासी से भरा जो मधुर गीत गाया उसका कारण क्या है। "मैं प्रेम खोजती हूं—उसके अभाव में मृत्यु" कोयल उत्तर देती है, और कवि के प्रति अपने प्यार की घोषणा करती हुई मनोरंजन के लिए चौथे दिन का निश्चय करती है। हालांकि यह केवल कल्पना में ही संभव है मगर कवि भी उस काली चिड़िया के प्यार में पागल होकर चौथे दिन की प्रतीक्षा करने लगता है।

प्रेम के उन्माद में बेचैन कवि दूसरे ही दिन बगीचे में पहुंच जाता है। यह देखकर वह भयंकर आश्चर्य में पड़ जाता है कि कोयल बेहूदगी के साथ घूरते और तेजी के साथ बात करते एक बंदर को निहायत निर्लज्जता से रिझा रही है। पहले तो उसकी इच्छा होती है कि वह बंदर को मार डाले लेकिन फिर उस आवेग को दबा देता है और कोयल की प्रेमवार्ता सुनने लगता है। कोयल उत्फुल्लतापूर्वक बंदर के उन तमाम गुणों की चर्चा करती है जिनसे मनुष्य वंचित है। सभ्य मनुष्य की इस हास्यास्पद स्थिति को भारती इस स्थल पर अपने में महसूस करते हैं। उस कविता का यह लंबा अंश हास्य रस से परिपूर्ण है :

मनुष्य के शरीर पर नहीं हैं
यदि तुम्हारी तरह रेशमी बाल
क्या कपड़ों में छिपा कर अपने अंग
उन्हें घूमना चाहिए तुम्हारे सुंदर
        रूप के सामने अभिमान से ?
क्यों, क्या उन्हें अपनी मूंछ और दाढ़ी छंटवा कर
संतुष्ट होना चाहिए यह मान कर
कि उनका चेहरा तुम्हारे सुंदर चेहरे से
        अच्छा है ?
क्या उन्हें तुम्हारी नकल में
पीना और नाचना चाहिए
सीढ़ियों से नापना चाहिए मंदिर के कंगूरे ?
वे आज भी उछल कूद सकते हैं तुम्हारी तरह
लेकिन पाएंगे कहां वे इतनी सुंदर पूंछ ?
क्या एक ऐंठी हुई धोती
या पीछे से जुटा हुआ पगड़ी का छोर
करेगा काम पूंछ का ?
कूदने, उड़ने, और ऊंचाई तक
पहुंचने के बाद भी

अपनी किस चीज से करेंगे वे तुलना
तुम्हारी दैविक पूंछ की–
शाकाहारिता और बुद्धि में
कोई भी जाति तुलना नहीं कर सकती
बंदर जाति की।

कवि की अंधी चाहत वास्तविकता पर पर्दा डाल देती है और वह झटके से अपनी तलवार बाहर निकाल लेता है लेकिन कोयल और बंदर दोनों गायब हो जाते हैं। अप्रसन्न कवि बहुत दुखी मनःस्थिति में एक रात बिता कर दूसरे दिन फिर वहां आता है। इस बार कोयल एक बेझिझक निर्भीकता के साथ एक बूढ़े बैल को रिझा रही होती है। कवि की तलवार चमचमाती हुई फिर बाहर निकलती है, लेकिन दोनों प्रेमी कवि को पहले की तरह झुंझलाहट का शिकार बनाकर गायब हो चुके होते हैं। वह एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उसकी आत्मा एक बार 'काली रात' की जकड़ में पड़ जाती है। चौथे दिन जब वह अपने मकान में बैठा हुआ कोयल के सौंदर्य और उसकी अस्थिर चित्तता पर विचार कर रहा होता है एक काली-सी चीज आकाश में दिखाई देती है और उसकी ओर कवि का ध्यान आकर्षित हो जाता है। वह तब तक उसका पीछा करता है जब तक वह आम के बगीचे में नहीं पहुंच जाती। आम की टहनी पर बैठी उस कोयल को कवि पहचान लेता है और पिछली घटनाओं के संदर्भ में उसके साथ बेरहमी से पेश आता है। कोयल सारा दोष भाग्य पर मढ़ देती है और कवि को अपने पिछले जन्म की कहानी सुनाती है। "पहाड़ी के एक चेर मुखिया की बेटी के रूप में उसका जन्म हुआ था : उसका नाम 'कुइली' रखा गया था। मदन (बैल से तात्पर्य) नाम के ममेरे भाई ने उसे एक पक्षीय ढंग से प्यार किया था। वह उसे प्यार तो नहीं करती थी, लेकिन दया भाव से उससे विवाह करने को तैयार हो गई। लेकिन उसके बाप ने उसका विवाह नेत्ताई कुरंगन (एक लंबे बंदर से तात्पर्य) से करने का फैसला किया था। विवाह का दिन भी निश्चित हो चुका था। इसी के आसपास कुइली अपने मित्रों के साथ जंगल में गई और खेल के दौरान एक स्थल पर अकेली पड़ गई। संयोगवश उसकी मुलाकात वंची के राजकुमार से हो गई। वे पहले ही दृष्टि में एक-दूसरे के प्रेम में बंध गए। अभी वे दोनों आनंद के अतिरेक में डूबे ही थे कि मदन और कुरंगन वहां पहुंच गए और दोनों आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने वंची के राजकुमार पर घातक आक्रमण किया। मरने के पहले राजकुमार ने भी उन दोनों को बुरी तरह घायल कर दिया और कुइली को आश्वासन दिया कि वे दूसरे जन्म में फिर मिलेंगे और तभी उनका पवित्र प्यार तृप्ति पा सकेगा। कुइली का जन्म आख्यान के कुइल (कोयल) के रूप में हुआ। लेकिन अपने साथ के अन्य पक्षियों से अलग वह मनुष्य की भाषा जानती थी। एक ऋषि ने उसके पिछले जन्म की परिस्थितियों की बात उसे बताई थी। उन्होंने यह भी कहा था कि वंची के राजकुमार का जन्म एक कवि के रूप में हुआ है।" कोयल के शब्द भारती

की गलतफहमी के कुहासे को काट देते हैं और वह हाथ पर बैठे उस नन्हें पक्षी को आवेग में चूमने लगते हैं। अरे, यह कैसा अचरज है। कोयल गायब हो जाती है। उसकी जगह पर एक युवा कुमारी खड़ी है सौंदर्य की आत्मा के रूप में, देवदूती-सी, सर्वगुण संपन्न :

अंगों से सुख के पराग बिखेरती खड़ी थी वहां एक कुमारी।
नजरें नीची करके देखा उसने मेरी ओर, और झुक गई
ईश्वर ने उसके सौंदर्य को निखारा था कितने सहज रूप में
उसकी आंखों में था पुरुष को पराजित कर देने का जादू।
उसकी दृष्टि के गहरे अर्थ को पकड़ने के लिए
बुद्धिमानों, विद्वानों से मैं केवल इतना कह सकता हूं :
गीत के रस और कविता की सुगंधि के घोल को
अमृत में पाग कर और प्रेम में जमा कर
ब्रह्मा ने की रचना उस अप्सरा की।

कवि का प्यार फलप्रद हुआ। वह उसके मदिरा से लाल होंठों को उत्फुल्लता में बहुत देर तक चूमता है। लेकिन वह भव्य दृश्य अचानक खत्म हो जाता है और कवि वास्तविकता की धरती पर एक तीखी आह भरते हुए लौट आता है। जगाने पर वह आम के हवादार बगीचे, और अत्यंत सुखद दिवास्वप्न से बहुत दूर अपने आप को अध्ययन के अपने ही तंग कमरे में पाता है।

आधुनिक समालोचकों ने इस आख्यान के कई कई अर्थ लगाए हैं। कविता का अंत एक अस्पष्ट चुनौती के साथ होता है :

ओ, बुद्धिमान पुराने कवियो।
यह कथा काल्पनिक कैसे होगी ?
यदि गहरे अध्ययन के बाद
मेरी इस कथा से निकल सकता है
एक दार्शनिक अर्थ
तब क्या तुम व्याख्या नहीं करोगे
कि सचमुच यह क्या है ?

पी. एम. सुन्दरम ने इस आख्यान में शैवों के उस पति-पशु-पसम तीनों के संयोग की खोज की है। राजकुमार ईश्वर है, कुइली आत्मा है। इसके पहले कि आत्मा का परमात्मा से मिलन हो सके, आत्मा का विभिन्न प्रकार की मायाओं से साक्षात्कार कराकर उन्हें समाप्त करना होता है। के. पी. राजगोपालन कुइल की तुलना स्वयं प्रेम से करते हैं :

"कोयल ही प्रेम है। जब तक प्रेम जीवन के साथ मोल-तोल और व्यापार नहीं करता तब तक वह अमर होता है लेकिन जिस क्षण वह अपने को वैवाहिक बंधनों में सीमित कर देता है, उसी क्षण उल्लास दुख में बदल जाता है।"

'कुइल पट्टु' के वास्तविकता के स्पर्श से गायब हो जाने वाले प्रेम की तुलना वे कीट्स

के 'ग्रीशियन अर्न' के चरित्र से करते हैं :

निर्भीक प्रेमी, माना तुम पास हो
सफलता की मंजिल के
लेकिन तुम कभी भी
कभी भी चूम नहीं सकते उसे
दुखी मत होओ।
सच है, तुम्हारे पास नहीं है
अपना कोई स्वर्गिक सुख
पर वह मुरझाएगी नहीं
ऐसे ही तुम उसे करते रहोगे निरंतर प्यार
और ऐसे ही वह खिली रहेगी सदा।

प्रोफेसर टी. पी. मीनाक्षिसुन्दरम पिल्लै पी. ए. सुन्दरम के 'ईश्वर' और के. पी. राजगोपालन के 'प्रेम' दोनों को एक धरातल पर ला देते हैं :

"पूरी कविता की हमारी व्याख्या इस 'प्रेम' शब्द की वास्तविक विशिष्टता पर आधृत है। तमिल संत तिरुमुलर प्रेम को शिव या परम से जोड़ते हैं। प्रेम ईश्वरीय महिमा का एक सुखद प्रकाश है। जिस क्षण वह च्युत होता है, अंधकार में बदल जाता है। यह एक स्वर्गिक उल्लास है, यदि नीचे आता है तो दुःख हो जाता है। यह नाद है, असफल होने पर विनाश का रूप धारण कर लेता है। यह भव्यता और प्रसिद्धि है, उलट जाने पर बदनामी और पतन है। यह दृढता है, टूटने पर अंत बन जाता है। इन शानदार सुझावों के सहारे कोई भी व्यक्ति उस परम या निजी शक्ति को मूल व्यवस्था के रूप में परिभाषित कर सकता है। वही स्वर्गिक उल्लास है, तान है, प्रकाश है और हर चीज की लय है। उपनिषदों में उस मंजिल की यात्रा को अग्नि की चौडी नदी में एक छोटे-से बाल के पुल से गुजरने की यात्रा कहा गया है। यात्री या तो उस मंजिल पर पहुंच जाता है या अग्नि-नरक में नीचे गिर जाता है।

"यह प्रेम का मार्ग है, क्योंकि सौंदर्य ही प्रेम को प्रकाशित करता है। यदि 'बीट्रिस' ने दान्ते को स्वर्ग में पहुंचा दिया तो 'कोयल'भी उससे कम महत्व की भूमिका नहीं निभाती।"

यह विशेषता केवल महान काव्य की ही होती है जिसके अनेक अर्थ लगाए जाते हैं और उसके बाद भी वह पूरी तरह व्याख्यायित नहीं होता। संभव है कि भारती के इस आख्यान और 'सौंदर्य तथा पशु' (ब्यूटी एंड बीस्ट) की कथा में कुछ समानताएं देखी जा सकती हैं। यहां पर दोनों की भूमिकाएं एक-दूसरी का प्रतिरूप हैं। कवि बिना किसी अड़चन के कोयल के प्रेम को स्वीकार करता है। कोयल का पक्षी रूप खत्म हो जाता है। बीच का अंतराल टूटता है और उसे अपने वास्तविक जीवन की पुनः प्राप्ति हो जाती है।

उसकी कुंजी संग्रह के शीर्षक संबंधी गीत में है जिसका प्रारंभ यों है :

प्रेम ! आह ! अनंत प्रेम

और प्रेम समाप्त हो जाता है
मृत्यु, सदा के लिए मृत्यु।

घने जंगल में छिप कर बैठी अकेली कोयल के मोहभंग में गाने की जिस स्थिति का चित्रण कवि ने किया है वह शेली की याद दिलाता है :

अपने जोड़े से विलग
ठंडी शाखा पर बैठी
एक चिड़िया कर रही है आर्तनाद
अपने प्रेमी के लिए।

कुइल कोमल और अबल सौंदर्य की भाग्य परीक्षा करता है। एक कमजोर, अकिंचन सी चीज जिसके पास जीवन के नाम पर सिर्फ मधुर आवाज है, निर्मम भाग्य के हवाले इसलिए कर दी जाती है क्योंकि वह अपने प्रेमी को आसानी से प्राप्त नहीं कर सकती।

कोयल प्रेम है और प्रेम अधिकतर उल्लास के बदले शोक के साथ जुड़ जाता है। कारण यह है कि प्रेम आसानी से माया का शिकार हो जाता है। सच्चे प्रेम की प्राप्ति कठिन है। जब कभी आत्माओं के बीच इस प्रकार का सच्चा परिणय होता है तो उससे उद्भूत उल्लास दैविक मिलन की तरह होता है। इसलिए उसकी भव्यता लौकिक स्पर्श के बाद सुरक्षित या जीवित नहीं रह पाती। अतः 'बीट्रिस' से भी स्वर्ग में ही मिलन हो सकता है। कवि ने भी कोयल को जो लौकिक चुंबन दिया उसी के कारण अकेला हो गया, यों उसकी दैविक झलक की स्मृति बनी रही। यह अमर स्मृति मरणशील को मुक्त कर देने के लिए काफी है। इस प्रकार यह वास्तविक प्रेम एक रहस्यवादी तत्व है, एक ऐसी अंतर्दृष्टि है जिसे शाश्वत कहा जा सकता है।

गद्य गीत

भारती की मुक्त छंद की कविताओं को छह वर्गों के अंतर्गत रखा गया है। उनके शीर्षक हैं : दृष्टि, शक्ति, पवन, सागर, धरती के दृश्य और स्वतंत्रता। मुक्त छंद के प्रयोग के ये प्रयत्न विभिन्न कालों को लेकर किए गए थे और संभवतया उनका सिलसिला भारती के वैदिक साहित्य के प्रारंभिक पठन से शुरू होता है। पांडिचेरी निर्वासन काल के दौरान ही उनका झुकाव वेदांत की ओर हो गया था। उनकी इच्छा थी कि बिना किसी आयास और न्यूनतम साहित्यिक शिल्प से अपने को स्वाभाविक और प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया जाय। इन कविताओं में भारती की रचना शक्ति को निर्बाध प्रवाह की उपलब्धि हुई। उनसे होकर भाव की एक के बाद दूसरी लहर गुजरती है। भारती के प्रकृति प्रेम की जड़ें वेदों में थीं। उसकी प्रशसा में उन्होंने निरंतर गीतात्मक अभिव्यक्ति की। जो शब्द निकले, उत्फुल्लता की चमक से परिपूर्ण थे। यदि जीवन युद्ध के प्रणों से भर जाए तो भी कोई बात नही। कल्पना का जीवन उनका अपना अर्थात निजी था। उस पर उनकी अपनी ही प्रभुसत्ता थी।

'दृष्टि' का प्रारंभ प्रकृति की मधुरता की गुहार से होता है और सूर्य की गुहार तक चला जाता है .

गर्मी ही प्रकाश की मां है
अग्नि है पराक्रमी ईश्वर
अग्नि है सूर्य

उसके बाद अग्नि संबंधी कुछ सुंदर प्रार्थनाएं आती हैं। उसका सिलसिला आगे बढ़ता है और 'विद्युत' की जांच पड़ताल शुरू हो जाती है :

वर्षा, आंधी और बिजली
विद्युत की चमचमाहट
हम उसकी प्रशंसा करते हैं

वह हमारे ज्ञान को प्रकाश दे।
बादलों के बच्चे फेंकते हैं नीचे
बिजली के फूल
बिजली के अभाव में नहीं
है कोई अस्तित्व—
यही बात लागू होती है सभी देवताओं पर।
काली चट्टानों में, श्वेत बालू पर, हरी पत्ती में,
लाल फूल में, नीले बादल में,
हवा में, आकाश में,
हर जगह छिपी है बिजली—
हम करते हैं उसकी प्रशंसा।

'शक्ति' की कविताएं भारती के 'विश्व-मां' के आदर्श की अभिव्यक्ति करती हैं। यहां तक कि सूर्य भी शक्ति के सैलाब में एक बुलबुला है, 'शक्ति के ताल में एक फूल है'। वह भयंकर और विनाशकारी है, कृपालु और रचनात्मक है। प्रकृति के पीछे शक्ति की ही सत्ता है और वह शुभ है। पवन जीवन है। वही मनुष्य को जीवित रखता है। वही सागर में तूफान है और मरुस्थल में रेत की आंधी है। वह स्वास्थ्य भी देता है और सुखद सुगंधीत भी। पवन देव पावन और विराट है और उसी के अनुसार उनका स्वागत भी अवश्य होना चाहिए :

उनके मार्ग में कीचड न हो
न दुर्गंधि, न चीजों के विकृत टुकड़े
न धूल, न किसी तरह की गुबार
आ रहे हैं पवन (देव)।
आओ, उनकी राह को साफ करें
उस पर पानी छिड़कें,
आओ, उनकी राह में पौधे उगाएं
बगीचे लगाएं।
आओ, उनकी राह में अगरबत्तियां जलाएं।
वह आएं एक अच्छी औषधि की तरह
वह आएं अमृत की तरह
वह आएं हमारा जीवन बनकर
पवन को नमन।
वह शक्ति के ही एक रूप हैं
वह हैं राजकुमार।

'पवन' खंड की कविताएं गीतों का एक खजाना हैं। दूसरा खंड 'सागर' का है जो

छोटा है। वह अपने में समुद्र, वायु और शक्ति को परमसत्ता के उस रूप में चित्रित करते हैं जिसकी विनम्र भाव से पूजा की जा सके।

'धरती के दृश्य' खंड में 'पशु-पक्षियों की संसद' जैसे कुछ कल्पनात्मक चित्र हैं। ये सुखी जीव इतने बुद्धिमान हैं कि मनुष्य के दुख के कारणों को देख सकते हैं :

मन ही भीतर का शत्रु है
जो काटता है हमारी जड़े
केवल मन—पराश्रयी मन है शत्रु।
आओ, इसे नोच दें, खसोट दें,
आओ, इसे मार कर गिरा दें।

देवताओं की संसद मनुष्य के दुख की ओर आकाश से देखती है। इन्द्र का निष्कर्ष है :

मनुष्य के लिए हमने गढ़ी थीं जो अच्छाइयां
उसे बहुत पहले
बादलों-से काले शैतान ने नष्ट कर दिया—
देवता अशक्त है और असुर शक्तिशाली
धर्म निष्प्रभावी है, अधर्म है बली
सत्य है कचड़ा, असत्य की व्याप्ति है
खुशी मुरझानी है, विजयी होना है दुख
धरती पर इसी तरह जन्मी थी बुराई।
मनुष्य घबरा गया था
प्रेरणा देने वाले
विश्वामित्र, वशिष्ठ, कश्यप और अन्य
देवतुल्य द्रष्टाओं के शब्द भाग गए—
छल के सूत्र पनपे और बढ़े
गंगा के लिए प्यासा था मनुष्य
पर मिली उसे एक मृगतृष्णा की जमीन

भारती ने इन कविताओं के माध्यम से तामिल काव्य में नयी शैलियों के प्रयोग किए। उन्होंने काव्य के नए क्षितिजों का उद्घाटन किया।

गद्य रचनाएं

उन्नीसवीं शताब्दी के लेखकों ने तमिल को बड़ी कुशलता से रूढिग्रस्त प्रयोगों की जकड से छुड़ाया। लेकिन भारती ने तमिल गद्य को उसकी गरिष्ठ बनावट की जकड से स्वतंत्र करके एक सुंदर लचीलापन दिया। उन्होंने लिखी और बोली जाने वाली तमिल के बीच की दूरी को कम किया। पत्रकारिता के सिलसिले में उन्हें अनुवाद का भी काम करना पड़ा था। इस काम ने उन्हें तमिल और अंग्रेजी के एक एक शब्द की बारीकियों की जानकारी दी। इसलिए ऐसे समय में भी जब कि वे बहुत तेज लिखते थे, उनके शब्द उद्देश्यपूर्ण और वास्तविक संदर्भ की दृष्टि से सटीक होते थे। उनके सामने सदैव साधारण पाठक की तस्वीर रहती थी। अतः उन्होंने अभिव्यक्ति की वह सीधी शैली अपनाई जो स्पष्ट और सुगम थी। कुशल निबंधकार होने के साथ साथ उन्होंने गद्य की अन्य विधाओं, उपन्यास और कहानी, को भी अपनाने का प्रयत्न किया और उसमें भी काफी सफल रहे।

उनकी एक गद्य रचना 'ज्ञानरथम्' को अत्यंत उत्कृष्ट माना गया है। उस रचना में 'ज्ञान के रथ' पर बैठे लेखक के काल्पनिक भ्रमण का विवरण है। क्योंकि उसका अनन्य मित्र मन भी वहां है, अतः वह उपशांति (चिंताहीनता) के लोक में प्रवेश करने में असमर्थ है। लेकिन तब भी गंधर्व लोक के द्वार उनके सामने खुलते हैं। वह सचमुच स्वर्ग है जहां शीतल समीर भी है और कर्णप्रिय संगीत भी। इसके वर्णन में भारती की तमिल एक अलौकिक गुण सेसपन्नहो जाती है। प्रमाण के लिए, उल्लास के इस लोक में वाद्य के तारों को झनझनाने का काम चंद्रमा की किरणें करती हैं। "यह कैसे संभव हो सकता है ?" यात्री आश्चर्य करता है। एक देवदूत उसे समझाता है, "चंद्रमा की किरणों में जन्मजात संगीत है। उसे तुम इस लोक में तो सुन सकते हो लेकिन धरती पर नहीं सुन सकते। इन मधुर ध्वनियों को धरती पर केवल कवि सुनते हैं।" लेखक खेलते हुए बच्चों को देखता है और उनकी निर्दोष खिलखिलाहट को सुनता है। प्रेम के ईश्वर का यह त्योहार एक स्वप्निल कल्पना है। इस गंधर्व लोक में कुछ भी अपारदर्शी नहीं है।

इसके अतिरिक्त उस रचना में 'सत्यलोक' और धरती के भी वर्णन हैं। सत्यलोक प्रकाश का एक विस्तृत क्षेत्र है। धरती सांसारिक चिंताओं से भरी हुई है। धर्मलोक में पहुंचने पर उनकी अग्नि परीक्षा होती है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ये 'धर्म' के सामने लाए जाते हैं। 'धर्म' उन्हें बाल गंगाधर तिलक की याद दिलाता है। इस स्थल पर कण्व लेखक से कहते हैं :

"अनुचित को मारने की अपेक्षा अज्ञान को मारने के लिए अधिक पराक्रम की आवश्यकता होती है। क्षत्रियों और वैश्यों का कर्तव्य है कि वे लोगों की रक्षा शारीरिक क्षति से करें। क्षत्रिय ही धर्म की रक्षा करता है। ब्राह्मण ज्ञान की रक्षा करता है। ब्राह्मण में असीम शक्ति, अनंत तेज का होना अनिवार्य है। उसे निश्चय ही वीर और उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। अज्ञान को अतिथि बनाने वाले असंख्य हैं। उनकी जड़ें बहुत गहरी हैं। अतिथि को नष्ट करना सरल नहीं है। उस वसंत को सुखा दो और विष के वृक्ष को जड़ से उखाड़ दो।"

लेकिन आत्मा के विभिन्न क्षेत्रों में की जाने वाली यह यात्रा, अनंत काल की नहीं हो सकती। यात्री की मानवीय दुर्बलताएं और उनके साथी 'मन' की बेचैनी उसे घुमाकर धर्मलोक के बाहर फेंक देती है। वह ट्रिप्लिकेन के अपने छोटे-से गंदे कमरे में वापस आ जाता है। अत्यंत कुशलतापूर्वक निभाया गया वह रूपक तमिल साहित्य में अतुलनीय है।

कहा जाता है कि भारती ने 'चिन्ना शंकरन कथा' नाम का एक आत्मकथात्मक उपन्यास भी लिख लिया था लेकिन दुर्भाग्यवश उसकी पांडुलिपी चोरी हो गई। वह फिर मिली ही नहीं। कुछ मित्रों के आग्रह पर उन्होंने उसके कुछ अध्याय पुनः लिखे, लेकिन उसे बीच में ही छोड दिया। उन्होंने 'चन्द्रिकायिन कथा' नामक एक दूसरा उपन्यास भी लिखना शुरू किया, लेकिन वह भी पूरा नहीं हुआ। उसके 9 अध्याय इस तथ्य के साफ प्रमाण हैं कि उनमें वर्णन को प्रवाहपूर्ण बनाने की कितनी कला थी। उपन्यास का प्रारंभ एक भूकंप से होता है। उस भूकंप में तमिलनाडु के दूर के एक गांव में, एक युवती विधवा विशालाक्षी एक नवजात शिशु के साथ, जो उसकी भतीजी है, बच जाती है। बाकी सारा परिवार खत्म हो जाता है। जवान विधवा के लिए गांव में सम्मान के साथ रह पाना बहुत कठिन है। वह किसी तरह बड़े दुख में तीन साल वहां बिताती है। दो समाज सुधारक, विश्वनाथ शर्मा नाम के एक संन्यासी से उसका विवाह करा देने में सहायक होते हैं। सुंदर और बुद्धिमती बालिका चन्द्रिका का पालन-पोषण करते हुए दोनों सुखी जीवन बिताते हैं। अचानक शर्मा पागल हो जाते हैं और कथा टूट जाती है। भारती के अनुसार यह अंश 'चन्द्रिका कथा' की भूमिका मात्र था। दोनों समाज सुधारक सुब्रह्मण्य अय्यर और वीरेशलिंगम् पंतुलु वास्तविक चरित्र थे। जी. विशालाक्षी के माध्यम से उन्होंने बाल वैधव्य की समस्या को सामने रखा। विश्वनाथ शर्मा उन युवा संन्यासियों के प्रतीक थे जो जीवन को उसके सहज रूप में स्वीकार नहीं करते। उनके माध्यम से सोमनाथ अय्यर के मकान में गृहस्थ जीवन

की समस्या को सामने लाया गया। हमें बालिका चन्द्रिका के व्यक्तित्व की थोड़ी-सी ही बानगी मिलती है और उसी के आधार पर हम उसके सुखद भविष्य की कल्पना करके प्रसन्न हो लेते हैं। वह उस अनसुनी लोरी के समान है जिसकी मधुरता पर विश्वास किया जाता है।

भारती की कहानियों ने तमिलनाडु में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है। 'नवतंत्र कथा' के लिखने की प्रेरणा उन्हें पंचतंत्र के प्राचीन आख्यानों से मिली थी। 'सर्पबालिका का गुलाब' और 'चतुर मणि अय्यर', में हास्य और 'बौद्धिकता' का अद्भुत समन्वय है। 'मधुकंडिकइ कोइल,' और 'रसिक शिरोमणि वैशाखनंदन' के बीच के चतुराई से भरे वाग्युद्ध के कारण ये कहानियां बहुत सुंदर बन पड़ी हैं। इन कहानियों की नैतिकता को विवेकशास्त्री संक्षेप में यों प्रस्तुत करते हैं :

"ईश्वर भक्ति सदैव फलप्रद होती है। लेकिन इस पूजा में समझदारी आवश्यक है। अज्ञान से भरा विश्वास शक्तिशाली नहीं होता। ईश्वर को नमन करते हुए व्यक्ति को सबसे पहले सही ज्ञान की ही मांग करनी चाहिए। सामान्य बुद्धि ही हर उपलब्धि तक पहुंचने का प्रारंभिक बिंदु है।"

भारती की कहानियां उन्हीं विषयों को स्पर्श करती हैं जो उनके प्रिय हैं—नारी की स्वतंत्रता, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, जाति प्रथा के कारण पैदा हुए भ्रम और सिद्धरों की वृद्धि। कहानियों में पर्याप्त हास्य और बौद्धिकता है। भाषा में स्वाभाविक वार्तालाप की सहजता का प्रवाह है।

अपने साप्ताहिक पत्र के 'नगरम्' शीर्षक स्तंभ में उन्होंने ऐसी दो इंच पटरियों की कल्पना की जो एक ही साथ सर्वज्ञ भी है और निष्पक्ष भी। मालिक की दुकान पर जो भी ग्राहक आता है उसे वे सुझाव देती है। इस स्तंभ के माध्यम से भारती आकाश के नीचे के हर विषय पर अपनी राय जाहिर करते हैं, बल्कि कहना चाहिए कि हर विषय पर चालू ढंग से इतना कुछ कह जाते हैं जो लोगों को अनावश्यक और बेकार भी लग सकता है।

अनुवाद

भारती ने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ अनुवादक के रूप में किया। उन्होंने विवेकानन्द के भाषणों, श्री अरविन्द के लेखों, पतंजलि के 'समाधि पद' और वेद की कुछ प्रार्थनाओं का अनुवाद किया। गीता के उनके तमिल अनुवाद को क्लासिक स्वीकार किया जाता है। अनूदित गीता की भूमिका में वे मायावाद और बौद्धधर्म की परीक्षा करते हुए इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि जीवन विराट का एक अंश है।

कविताओं के अनुवाद में एक है जॉन स्कर का 'गाउन ऑव लेट अस प्रिटेंड'। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'वन्देमातरम्' के उनके दो तमिल अनुवाद अपने आप में काव्यात्मक रचनाएं हैं।

अंग्रेजी का लेखन

अंग्रेजी भाषा पर भारती को कमाल का जो अधिकार प्राप्त था वह उल्लेखनीय है। अपनी आत्मकथात्मक कविता में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का बडा विरोध किया है लेकिन यह विरोध केवल उस बिंदु पर है जहां अंग्रेजी की शिक्षा तमिल की कीमत पर विकसित होती है। जहां तक प्रश्न भाषा तक सीमित है न केवल वे उसके विरुद्ध नहीं थे वरन सचमुच उसके साहित्य के बड़े अनुरागी थे। उन्होंने निःसंकोच स्वीकार किया था कि शेली और विक्टर ह्यूगो को मूल अंग्रेजी और फ्रांसीसी में तथा गेटे के अंग्रेजी अनुवाद को उन्होंने पढ़ा था और उनके अतुलनीय सौंदर्य की प्रशंसा की थी। अंग्रेजी के रोमांटिक कवि उन्हें अत्यंत प्रिय थे और उनकी सबसे बड़ी इच्छा यही थी कि उन्हें तमिलनाडु का शेली माना जाए। उनके भाई सी. विश्वनाथन ने लिखा है :

"मैंने यह कहते हुए भी सुना है कि उन्होंने (भारती ने) 'शेलियन गिल्ड' नाम की एक संस्था भी बनाई थी। संस्था के सदस्यों के बीच वे अक्सर उस प्रसिद्ध कवि की पंक्तियों की व्याख्या किया करते थे।"

यदा-कदा भारती 'न्यू इंडिया', 'कॉमन-वेल्थ' और 'आर्य' नामक अंग्रेजी पत्रिकाओं को अपनी रचनाएं भी प्रकाशनार्थ देते थे। अंग्रेजी की रचनाओं में भी भारती के "विशुद्ध लहजे, रंग और उनकी भारतीयता को देखा जा सकता है।" उन्होंने जैसा सोचा वैसा ही लिखा। उनकी कुछ रचनाएं 'एसेज एंड अदर प्रोज फ्रैगमेंट्स' तथा 'अग्नि एड अदर पोएम्स एंड ट्रांसलेशंस' नाम की दो छोटी पुस्तकों में संगृहीत की गई हैं। उनकी रुचि का विस्तार रस-ध्वनि के सिद्धांत से लेकर जातिप्रथा के अपराध तक है। 'स्त्री का स्थान' विषय का विश्लेषण करते हुए वे बहुत जोरदार ढंग से कहते हैं :

"राष्ट्र घरों से बनते हैं। जब तक आप अपने घरों में समानता और न्याय के व्यवहार का पूर्ण रूप से पालन नहीं करते तब तक सार्वजनिक जीवन में उनके पालन किए जाने की आशा नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि सार्वजनिक जीवन का आधार ही घरेलू

जीवन है। जो व्यक्ति घर पर खलनायक है वह न्यायपीठ या विधानसभा में बैठने पर अचानक या एक क्षण में अपने को संत के रूप में नहीं बदल सकता।"

उनके लेखन में आवरण नहीं है, बनावट नहीं है। शब्द सीधे दिल से निकलते हैं और सीधा प्रभाव छोड़ते हैं।

"हर समझ-बूझ वाली सरकार बोलने की स्वतंत्रता की सबसे सच्ची समर्थक होती है। जब तुम किसी व्यक्ति की जुबान रोकते हो तब उसके मन को कड़वाहट से भर देते हो, उसे सख्त बना देते हो। इस दुनिया का आधार दिमाग है। विचार ही वस्तुएं हैं।

"एक पुराने भारतीय लेखक का कहना है कि बुद्धिमान राजा को सौ विचारशील लोगों के आदर की, लाखों मूर्ख अंध भक्तों की तुलना में अधिक चिंता करनी चाहिए। सम्मान की इच्छा वाले किसी देश की पहली शर्त यह है कि वह सभी दलों को प्रत्येक विषय में मुक्त ढंग से विचार प्रकट करने की छूट दे।"

भारती ने अंग्रेजी में कम ही कविताएं लिखीं लेकिन उनसे यदि एक ओर अंग्रेजी पर उनके अधिकार का पता चलता है, तो दूसरी ओर यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि वे भाषा को रुग्णता की सीमा तक तराशने की प्रवृत्ति के निंदक थे। कविताओं के अलावा उन्होंने 'एक दूसरे की बांहों में (इन ईच अदर्स आर्म्स)' जैसी प्रवाहपूर्ण मुक्त छंद की अंग्रेजी कविता भी लिखी।

उसे अमर कहो

गद्य और पद्य की दोनों विधाओं के पंडित, कई भाषाओं के गहरे अध्येता, अथक और विवेकशील लेखक भारती का स्थान तमिल साहित्य में असंदिग्ध है। वास्तव में, जब हम उनके जीवन और लेखन का सर्वेक्षण करते हैं तो दृष्टि उनकी गहरी आशावादिता पर टिक जाती है। रुग्ण स्वास्थ्य, भयानक दरिद्रता और बार बार की निराशाओं के बावजूद उन्होंने शक्तिमाता के प्रति अपने मन के दृढ विश्वास को आद्यंत बनाए रखा। वह माता ऐसी है जो निश्चय ही हमारी रक्षा करती है और हमें संपन्न बनाती है। उनके विश्वजनीन प्रेम ने प्रकृति को मित्र के रूप में देखा। पचतत्वों की विपुलता से वे उल्लसित होते थे। उनके गद्य और पद्य की विपुलता ही उनके जीवन दर्शन की, प्रसन्नतापूर्वक रहने की, अभिव्यक्ति करती है। इसमें मृत्यु और अंधेरे का निषेध है। भारती में संन्यासियों का एक भी अस्वीकार नहीं था। 'चन्द्रिकायिनिकथा' का नायक विश्वनाथ शर्मा संन्यासियों के बाने को फेंक कर जीवन में लौट आने का निर्भीक कदम उठाता है। सच्चा योग मन के नियंत्रण में है। एक पाक-साफ शरीर पाक-साफ दिमाग में रहे तो सिर्फ पाक-साफ विचार आएंगे और वह अपने को पाक-साफ कामों में लगाएगा। जो कुछ बच जाता है उसके लिए मनुष्य को भावावेग में न तो अतीत की याद करके वर्तमान को नरक बनाना चाहिए न निराशा में विश्व से संन्यास ले लेना चाहिए। सच्चा योग वह है जो वर्तमान वातावरण में ही अपनी आंखों को भविष्य पर टिकाने का अभ्यासी बनाकर .. न कि मृत अतीत को देखने का आदी करके, खुशी की घंटियां बजाए :

> निरर्थक पश्चाताप की पीड़ा में
> अतीत की चीजों के
> टूटने या बरबाद होने की याद कर
> मूर्खो गढ़े में लुढ़को मत।
> अतीत लौटेगा, नहीं—

उसकी जगह पर सिर्फ यह सोचो
कि आज तुमने पाया है
एक नया जन्म।

वाल्ट ह्विट्मैन के बारे में जॉन काउपर पॉविस ने कहा है, "वैसी स्थिति में मुझे लगता है कि वाल्ट ह्विट्मैन की आशावादिता ही उसके काव्य की जीवन शक्ति है। कवि हृदय को सर्वाधिक तुष्टि देने वाले जिस निर्भीकतम रहस्यवाद का प्रक्षेपण विश्वास पैदा करने के लिए करता है वही उसकी आशावादिता की जीवन शक्ति होती है।"

यह शब्द सुब्रह्मण्य भारती पर भी ठीक ठीक लागू होते हैं। वाल्ट ह्विट्मैन के गहरे प्रशंसक भारती ने भी उसी तरह की मुक्त छंद की कविताएं लिखीं जिनमें समस्त प्रकृति में ईश्वरीय सत्ता को शक्तिशाली ढंग से स्वीकार किया जाता है। उनके आदर्श लोक में न तो शोक है न संदेह का रोग। मृत्यु को एक चीथड़े की तरह उपेक्षापूर्वक फेंक देना है। प्रकृति का उसके दृश्यात्मक या ध्वन्यात्मक रूप में प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करना है। यदि हम इस तरह की इच्छा रखें, और इसके लिए कार्य करें तो लोगों को एक सुखी और संपन्न भविष्य का आश्वासन दिया जा सकता है। युवावस्था मे ही भारती की मृत्यु हो गई, लेकिन हमें आशा और उत्साह का अमर संदेश देने के बाद ही वे मरे। हमें इस बात का पश्चाताप नहीं होना चाहिए कि उन्हें अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा या नोबुल पुरस्कार नहीं मिला। आज संसार उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की महानता को स्वीकार कर रहा है।

भारती ने विद्वान और पराक्रमी स्वामीनाथ अय्यर के बारे में कहा था, "जब तक तमिल जीवित हैं, वे भी अध्येताओं, पाठकों के हृदय मे, उनकी जिह्वा पर जीवित रहेंगे।" भारती को भी, (क्योंकि वे कवि हैं) यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि तमिलवासियों के मन में उन्हें भी वही स्थाई स्थान प्राप्त है जो स्वामीनाथ अय्यर को, उनकी जिह्वा पर उनका भी नाम वैसे ही आता है जैसे स्वामीनाथ अय्यर का। नवरत्न राम राव के शब्दों में, "जब तक लोगों के मन में मातृभूमि और अच्छाई से प्रेम है, तब तक भारती को पढ़ने का सिलसिला कायम रहेगा। यदि यह भी मान लिया जाए कि वे तभी तक जीवित हैं जब तक कि शानदार तमिल भाषा, तब भी यह कहना गलत न होगा कि वे अमर हैं।"

पुस्तक सूची

1. भारती द्वारा लिखित

महाकवि भारतीयार कवितैगल : शक्ति कार्यालयम, मद्रास, 1957

भारतीज राइटिंग्स—एसेज : भारती प्रचारालयम, मद्रास, 1940

एसेज—कलैगल : भारती प्रचारालयम, मद्रास, 1949

अग्नि एंड अदर पोएम्स इन ट्रांसलेशंस - संपादक सी. आर. रेड्डी और के. एस. वेंकट रमणी : भारती प्रचारालयम, मद्रास, 1937

एसेज एंड अदर प्रोज फ्रैगमेंट्स - संपादक : सी. आर रेड्डी और के. एस. वेंकट रमणी : भारती प्रचारालयम, मद्रास, 1937

2. दूसरों द्वारा भारती पर लिखित

अनन्ताचारी अक्रूर : *कवि चक्रवर्ती सुब्रह्मण्य भारती चरित्रम* (कितप्पा मलार प्रसारालयम, शेनकोट्टा, 1936)

भारती, थंगामल्ल : *भारतीयरुम कवितायुम* (पुदुमइ पदिप्पगम, कराईकुडी, 1947)

अयंगार, के. आर. श्रीनिवास : *इंडियन राइटिंग इन इंग्लिश* (एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1962)

महादेवन, पी. : *सुब्रह्मण्य भारती : एक मेमॉयर* (अत्री पब्लिशर्स, मद्रास, 1957)

नन्दकुमार, प्रेमा : *भारती इन इंग्लिश वर्स* (हिगिनबाथम्स, मद्रास, 1958)

सुब्रह्मण्य भारती (राव एंड राघवन, मैसूर, 1964)

पद्मनाभन, आर. ए. : *चित्र भारती* (अमुद निलयम, मद्रास, 18, 1957)

प्रभु आर. के. (संकलनकर्ता) : *इंडियन नेशनल सांग्स* (पापुलर प्रकाशन, बंबई, 1966)

रामगोपालन और सुन्दरराजन : *कन्नन एक कवि* (शक्ति कार्यालयम, मद्रास, 1937)

रामस्वामी, वी. : *महाकवि भारतीयार* (शक्ति कार्यालयम, मद्रास, 1944)

शास्त्री के. एस. रामस्वामी : *सुब्रह्मण्य भारती – हिज माइंड एंड आर्ट* (वेल्थ एंड वेल्फेयर आफिस, मद्रास, 1951)

श्रीनिवास राघवन, ए. (संपादक) : *द वॉयस ऑफ ए पोएट : इंग्लिश रेंडरिंग्स ऑफ भारतीज वर्सेज* (भारती तमिल संगम, कलकत्ता, 1951)

सुब्रह्मण्यम, के. एन., संपादक : *भारती* (तमिल राइटर्स एसोसिएशन, मद्रास, 1959)

सुन्दरम, पी. राय : *भारतीयार : वरालरूम कवितायुम* (ओरिएंट लांगमैन्स, मद्रास, 1954)

थूरन, पेरिआसामी : *भारती तमिष्* (अमुद निलयम, मद्रास, 1954)

विश्वनाथन, सी. : *भारती एंड हिज वर्क्स* (भारतीय प्रचारालयम, मद्रास, 1929)

अनुक्रमणिका

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित